सच्चा धर्म क्या है?

लेखक

अब्दुल्लाह बिन अब्दुल अज़ीज़ अल-ईदान

अनुवादक

अताउर्रहमान ज़ियाउल्लाह

संशोधन

जलालुद्दीन एवं सिद्दीक़ अहमद

www.islamhouse.com

1428-2007

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

अल्लाह के नाम से आरम्भ करता हूँ जो अति मेहरबान और दयालु है।

प्रस्तावना

प्रत्येक धर्म, या सिद्धान्त या फलूसफा के कुछ उसूल व नज़रियात होते हैं जो उसे नियंत्रण करते हैं, कुछ कार्य-प्रणालियां और विधियाँ होती हैं जिन पर वह चलता है और कुछ कद्रें (मूल्यताएं, मान्यताएं) होती हैं जिनकी वह पाबन्दी करता है। इस दृष्टि-कोण से हम हर उस व्यक्ति के लिए जो मौलिक रूप से मुसलमान है अगले पन्नों में उसके धर्म के बारे में सन्छिप्त रूप रेखा प्रस्तुत करेंगे ; ताकि उसका इस्लाम और उसकी इबादत (उपासना) ज्ञान और जानकारी के आधार पर हो, केवल दूसरों की तक्लीद और अनुयाय पर आधारित न हो। किन्तु जो व्यक्ति पहले से मुसलमान नही है उसके लिए सच्चे धर्म अर्थात इस्लाम धर्म के बारे में सन्छिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे, ताकि उसे इस धर्म की मुल्यताओं

तथा उन कार्य-प्रणालियों, आचरणों और आदर्शों पर चिंतन और विचार करने का उचित (शुभ) अवसर प्राप्त हो सके जिसके कारण यह धर्म अन्य धर्मों से प्रतिष्ठित है, ताकि यह जानकारी और चिंतन उसे अगले क़दम की ओर - इस धर्म से आकर्षित होने और इस से सन्तुष्ट होने की ओर लेजाए, इसलिए कि यह ईश्वरीय धर्म है मानव जाति का बनाया हुआ धर्म नहीं है, और अपने समस्त पक्षों (पहलुंवों) और शिक्षाओं में सम्पूर्ण है जैसाकि आने वाली पंक्तियों में पढ़ा जाएगा, हो सकता है यह सब चीज़ें उसे शीघ्र ही दृढ़ विश्वास, सम्पूर्ण सन्तुष्टि और पूरी सहमति के साथ इस धर्म में प्रवेष करने के बारे में सोच-विचार करने का आमन्त्रण दें, इसका कारण यह है कि वह इस धर्म में प्रवेष करने पर -निश्चित रूप से- वास्तविक सौभाग्य, हार्दिक सन्तोष, सुख चैन और हर्ष व आनन्द पाएगा, और उस समय वह अपनी आयु के हर उस दिन, घन्टा और मिनट पर शोक और दुख प्रकट करेगा जो उसने इस महान धर्म से अलग रह कर बिताया है!

इस प्रस्तावना में हम हर सच्चे धर्म के अभिलाषी को एक महत्वपूर्ण बात से सावधान कराना आवश्यक समझते हैं और वह यह कि आपको यह बात इस्लाम से परिचित

होने, एक ईश्वरीय धर्म के रूप में इससे आश्वस्त होने और इसे स्वीकार करने में रूकावट न बने, जो आप कुछ मुसलमानों के अन्दर - अन्य धर्मों के मानने वालों की तरह - दुष्ट आचरण, या फैली हुई बुराईयाँ, या धोखा-धड़ी और अत्याचार आदि को देखते हैं, क्योंकि यह लोग शुद्ध (वास्तविक) इस्लाम के प्रतिनिधि (नुमाइन्दा) नहीं हैं, यह लोग केवल अपने प्रतिनिधि हैं, इस्लाम इनके आचरण और दुष्ट कर्मों से बरी (अलग) है, और इसे अल्लाह तआला पसन्द नहीं करता है और न ही उनके पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ही इसे पसन्द करते हैं।

अतः हम आप को इन सन्छिप्त पन्नों को पढ़ने का आमन्त्रण देते हैं, ताकि आप स्वयं इस धर्म की शिक्षाओं की वास्तविकता और इसके बारे में इसके मानने वाले जो कुछ कहते हैं उसकी सत्यता का निश्चय कर सकें, हमें विश्वास है कि आप इसके अन्दर ऐसी ज्ञान की बातें (समाचार) मूल्याताएं (क़द्रें) और विचार धाराएं पाएंगे जिस से आपको प्रस्न्नता होगी, और जिसे आप बहुत दिनों से ढूंढ़ रहे थे, और अब उसे आप ने स्वयं पा लिया है, इसलिए कि अल्लाह तआला आप से प्रेम करता है और लोक तथा प्रलोक में आपके लिए भलाई,

उदारता और सौभाग्य चाहता है। इसलिए हमें आशा है कि आप इसे शुरू से आखिर तक पढ़ेंगे और जिस सच्चाई का यह आमन्त्रण देता है उसे स्वीकार करने में शीघ्रता करेंगे, क्योंकि सच्चाई इस बात के अधिक योग्य है कि उसकी पैरवी की जाए, तथा आप अपने नफ्से अम्मारा (बुराई पर उभारने वाली आत्मा) को, या अपने शत्रु शैतान को, या बुरे साथियों को, या पूजा के अयोग्य भगवान की पूजा करने वाले अपने परिवारों को इस बात की अनुमति न दें कि वह आप को मार्गदशर्न के प्रकाश और इस संसार में सौभाग्य के स्वाद और जीवन के परम सुख से रोक दें, जो आप को इस धर्म में प्रवेष करने की घोषणा करने पर प्राप्त होगा। इसलिए कि वह आपको इससे रोक कर आपको अपनी पूरी जीवन में सबसे महान और सबसे मूल्यवान चीज़ से लाभान्वित होने से वंचित कर देंगे, वह महान और बहुमूल्य चीज़ है मरने के पश्चात स्वर्ग से सफल होना ... तो फिर क्या आप इस आमन्त्रण को स्वीकार करेंगे ... अत्यन्त बहुमूल्य उपहार जो हम आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं ... हमें आपसे यही आशा है।

अब धीरे-धीरे इस सन्छिप्त परिचय के पन्नों को पलटते हैं।

धर्म का अर्थ

जब हम धर्म को इस पहलु (दृष्टि) से देखते हैं कि वह धर्मनिष्ठा के अर्थ में एक मानसिक अवस्था है तो उसका तात्पर्य यह होता है कि:

''एक अदृश्य परम अस्तित्व के वजूद की आस्था रखना, जो मानव से संबंधित कार्यों का उपाय, व्यवस्था और संचालन करती है, और वह ऐसी आस्था है जो उस परम और दिव्य अस्तित्व की लोभ (रूचि) और भय के साथ, विनय करते हुए और प्रतिष्ठा व महानता का वर्णन करते हुए उसकी आराधना करने पर उभारती है।''

और संछिप्त वाक्य में यह कह सकते हैं कि:

''एक अनुसरण और पूजा पात्र प्रमेशवरिक अस्तित्व पर विश्वास रखना।''

किन्तु जब हम उसे इस पहलु (दृष्टि) से देखते हैं कि वह एक बाहरी वास्तविकता है तो हम उसकी परिभाषा इस प्रकार करेंगे कि वह:

''समस्त काल्पनिक सिद्धांत जो उस ईश्वरीय शक्ति के गुणों को निर्धारित करते हैं और समस्त व्यवहारिक नियम जो उसकी उपासना -इबादत- की विधियों (ढंग और तरीक़े) की रूप रेखा तैयार करते हैं।''

धर्मों के प्रकार :

अध्ययन कर्ता इस बात से परिचित हैं कि धर्म के दो वर्ग (प्रकार) हैं:

1. ***आसमानी या पुस्तक-सम्बन्धी धर्म***: अर्थात जिस धर्म की कोई (धर्म) पुस्तक हो जो आकाश से अवतरित हुई हो, जिसमें मानव जाति के लिए अल्लाह तआला का मार्गदर्शन हो, उदाहरण स्वरूप ''यहूदियत'' जिसमें अल्लाह तआला ने अपनी पुस्तक ''तौरात'' को अपने संदेश्वाहक ''मूसा'' अलैहिस्सलात वस्सलाम पर अवतरित किया।

और जैसेकि ''ईसाईयत'' (Christianity) जिसमें अल्लाह तआला ने अपनी पुस्तक ''इन्जील'' को अपने संदेश्वाहक ईसा अलैहिस्सलात वस्सलाम पर अवतरित किया।

और जैसेकि ''इस्लाम'' जिसमें अल्लाह तआला ने ''कुरआन'' को अपने अन्तिम संदेश्वाहक और दूत ''मुहम्मद'' सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर अवतरित किया।

इस्लाम और अन्य किताबी (पुस्तक-सम्बन्धी, आसमानी) धर्मों के मध्य अन्तर यह है कि अल्लाह तआला ने इस्लाम के मूल सिद्धान्तों और उसके मसादिर (स्रोतों) की सुरक्षा की है, क्योंकि यह मानव जाति के लिए अन्तिम धर्म है, इसलिए यह हेर-फेर और परिवर्तन से ग्रस्त नहीं हुवा है, जबकि दूसरे धर्मों के मसादिर (स्रोत) और उनकी पवित्र पुस्तकाएं नष्ट होगईं और उनमें हेर फेर, परिवर्तन और सन्शोधन किया गया।

2. *मूर्तिपूजन और लौकिक धर्म*: जिसकी निस्बत (संबंध) धरती की ओर है अकाश की ओर नहीं है, और मनुष्य की ओर है अल्लाह की ओर नहीं है, उदाहरणतः बुद्ध मत, हिन्दू मत, कन्फूशियस, ज़रतुश्ती, और इसके अतिरिक्त संसार के अन्य धर्म।

यहाँ पर स्वतः एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा होता है और वह यह कि *:* **क्या एक बुद्धिमान प्राणी वर्ग मनुष्य जाति को यह शोभा देता है कि वह अपने ही समान**

किसी प्राणी वर्ग को पूज्य मान कर उसकी उपासना करे?! चाहे वह कोई मनुष्य हो या पत्थर (मूर्ति), चाहे गाय हो या कोई अन्य वस्तु, **और क्या उसका जीवन सौभाग्य हो सकता है और उसके कार्य समूह और समस्याएं व्यवस्थित हो सकती हैं जबकि वह ऐसी व्यवस्था और शास्त्र व संविधान की पाबन्दी करने वाला है जिसे 'ए' टू 'ज़ेड' मनुष्य ने बनाया है?!**

क्या मनुष्य को धर्म की आवश्यकता है?

मनुष्य के लिए सामान्य रूप से धर्म की, और विशेष रूप से इस्लाम की आवश्यकता, कोई द्वितीय और अमुख्य (महत्वहीन) आवश्यकता नही है, बल्कि यह एक मौलिक और बेसिक आवश्यकता है, जिसका संबंध जीवन के रत्न (सार), ज़िन्दगी के रहस्य और मनुष्य की अथाह गहराईयों से है।

अति सम्भावित संछेप में - जो समझने में बाधक न हो - हम मनुष्य के जीवन में धर्म की आवश्यकता के कारणों का वर्णन कर रहे हैं :

1. संसार के महान तत्वों को जानने की अक्ल (बुद्धि) की आवश्यकताः

मनुष्य को धार्मिक आस्था (विश्वास) की आवश्यकता -सर्वप्रथम- उसे अपने आप (नफ़्स) को जानने और अपने आस पास की महान अस्तित्व (जगत) को जानने की आवश्यकता से उत्पन्न होती है, अर्थात उन प्रश्नों का उत्तर जानने की आवश्यकता जिसमें मानव शास्त्र (विज्ञान) व्यस्त है किन्तु उसके विषय में कोई संतोषजनक उत्तर जुटाने में असमर्थ है।

मनुष्य के प्रारम्भिक जन्म ही से कई ऐसे प्रश्न उससे आग्रह कर रहे हैं जिसका उत्तर देने की आवश्यकता है: कि **वह कहां से आया है?** (आरम्भ क्या है?) **उसे कहां जाना है?**(अन्त क्या है?) **और क्यों आया है?!** (उसके वजूद का उद्देश्य क्या है?!) जीवन की आवश्यकताएं और समस्याएं उसे यह प्रश्न करने से कितना ही बाज़ रखें, किन्तु वह एक दिन अवश्य उठ खड़ा होता है ताकि वह अपने आप से इन अनन्त (सर्वदा रहने वाले) प्रश्नों के बारे में पूछे :

(क) मनुष्य अपने दिल में सोचता है कि: मैं और मेरे चारों ओर यह विशाल जगत कहां से उत्पन्न होगया

है? क्या मैं स्वतः अपने आप से पैदा होगया हूँ, या कोई जन्मदाता है जिसने मुझे जन्म दिया है ? और वह सृष्टा (पैदा करने वाला) कौन है ? मेरा उससे क्या सम्बन्ध है? इसी प्रकार यह विशाल संसार अपनी धरती और आकाश, जानवर और वनस्पति, जमादात (खनिज पदार्थ) और खगोल समेत क्या अकेले (स्वतः) वजूद में आगए हैं या उसे किसी मुदब्बिर (यत्न शील) सृष्टा (खालिक़) ने वजूद बख्शा है ?

(*ख*) फिर इस जीवन के पश्चात ... और मृत्यु के पश्चात क्या होगा ? इस धरती पर इस सन्छिप्त यात्रा के पश्चात कहां जाना है ? क्या जीवन की कथा केवल यही है कि *'' माँ जनती है, और धरती निगलती है ''* और उसके बाद कुछ नहीं है ? सदाचारों और पवित्र लोगों का अन्त जिन्होंने सत्य और भलाई के मार्ग में अपनी जानों को निछावर कर दिया और दुष्टकर्मों और पापियों का अन्त जिन्होंने शह्वत, लालसा और नफ्सानी ख्वाहिश के मार्ग में दूसरों को बलि चढ़ा दिया, समान और बराबर हो सकता है ? क्या जीवन बिना किसी बदले और प्रतिफल के यों ही मृत्यु पर समाप्त होजाएगी? या मरने के पश्चात एक अन्य जीवन भी है

जिसमें दुष्टकर्मियों को उनके कर्म का बदला दिया जाएगा और सत्कर्म करने वालों को अच्छा प्रतिफल मिलेगा ?

(ग) फिर यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य की उत्पत्ति क्यों हुई है ? उसे बुद्धि और सोचने समझने की शक्ति क्यों प्रदान की गई है और वह समस्त जानदारों से क्यों श्रेष्ठ है ? आकाश और धरती की समस्त चीज़ें उसके अधीन क्यों कर दी गई हैं ? क्या उसके जन्म लेने का कोई उद्देश्य है? क्या उसके जीवन काल में उसका कोई कर्तव्य है? या वह केवल इसलिए पैदा किया गया है कि वह जानवरों के समान खाए पिए, फिर चौपायों के समान मर जाए ? यदि उसके वजूद का कोई उद्देश्य और मक़्सद है तो वह क्या है ? और वह उसे कैसे पहचानता है ? (पहचाने गा ?)

यह वो प्रश्न हैं जो हर युग में मनुष्य से अनुग्रह पूर्वक ऐसे उत्तर का तक़ाज़ा करते हैं जो प्यास को बुझा दे और उससे हृदय को सन्तुष्टि प्राप्त हो, और सन्तोष जनक उत्तर प्राप्त करने का एक ही मार्ग है और वह है दीन (धर्म) का आश्रय लेना और उसकी ओर पलटना .. .. जो धर्म मनुष्य को -सर्वप्रथम - इस बात से अवगत कराता है कि वह अनिस्तित्व से अस्तित्व में सहसा नहीं

आगया है, और न ही इस जगत में अकेले (स्वयं) स्थापित होगया है, बल्कि वह एक महान सृष्टा की एक सृष्टि है, वह उसका पालनहार है जिसने उसकी उत्पत्ति की, फिर उसे ठीक ठाक किया, फिर उसे शुद्ध और उचित बनाया, और उसमे रूह फूंकी (जान डाला), तथा उसके कान, आँख और दिल बनाए, और उसे उसी समय से अपनी बाहुल्य अनुकम्पाएं प्रदान कीं जब वह अपनी माँ के पेट में गर्भस्थ था, (अल्लाह तआला का फरमान है) :

﴿أَلَمْ نَخْلُقْكُمْ مِنْ مَاءٍ مَهِينٍO فَجَعَلْنَاهُ فِي قَرَارٍ مَكِينٍ إِلَى قَدَرٍ مَعْلُومٍO فَقَدَرْنَا فَنِعْمَ الْقَادِرُونَ﴾

[المرسلات:٢٠- ٢٣].

क्या हमने तुम्हें एक हक़ीर (तुच्छ) पानी (वीर्य) से पैदा नहीं किया, फिर हमने उसे सुरक्षित स्थान में रखा, एक निर्धारित समय तक, फिर हमने अनुमान लगाया, और हम कितना उचित (अच्छा) अनुमान लगाने वाले हैं। (सूरतुल-मुर्सलातः २०-२३).

और धर्म ही मनुष्य को इस बात से अवगत कराता है कि: वह जीवन और मरण के पश्चात कहाँ जाएगा ? धर्म ही उसे यह जानकारी देता है कि मौत केवल विनाश

और अनस्तित्व नहीं है, बल्कि वह एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव (मन्ज़िल) की ओर ...बर्ज़ख़ी जीवन की ओर स्थानांतरित होना है। उसके पश्चात दूसरा जीवन है जिसमें हर प्राणी को उसके कर्मों का पूरा पूरा बदला दिया जाएगा, और जो कुछ उसने कर्म किया है उसमें वह सदैव रहेगा, सो वहां किसी कार्यकर्ता का अमल चाहे वह पुरूष हो या स्त्री नष्ट नहीं होगा, और ईश्वर (अल्लाह) के न्याय से कोई अत्याचारी और क्रूर या अहंकारी और अभिमानी जान नहीं छुड़ा सकता है।

धर्म ही मनुषय को यह ज्ञान प्रदान करता है किः वह किस उद्देश्य के लिए पैदा किया गया है ? उसे आदर व सम्मान और प्रतिष्ठा व सत्कार क्यों प्रदान की गई है ? उसे उसकी ज़िन्दगी के मक़ूसद और उसमें उसके दायित्व और कर्तव्य से परिचित कराता है, कि उसे निरर्थक और बेकार नहीं पैदा किया गया और न ही उसे व्यर्थ छोड़ दिया है, उसकी उत्पत्ति इस लिए हुई है ताकि वह धरती पर अल्लाह तआला का प्रतिनिध और उत्तराधिकारी बन जाए, उसे अल्लाह के आदेश के अनुसार निर्माण (आबाद) करे, और उसे अल्लाह तआला की प्रिय चीज़ों के लिए अधीन (दमन) करे, उसके भीतर पाई जाने वाली चीज़ों की खोज और अविष्कार करे, और बिना

दूसरों के अधिकार पर अत्याचार किए और अपने रब (पालनहार) के अधिकार को भूले हुए उसकी पवित्र चीज़ों को खाए, और उसके ऊपर उसके रब (पालनहार) का सर्वप्रथम अधिकार यह है कि वह अकेले उसी की इबादत (उपासना) करे, उसके साथ किसी को साझी न ठहराए, और यह कि उसकी इबादत उसी प्रकार करे जिसे अल्लाह तआला ने अपने उन संदेश्वाहकों (रसूलों) की ज़ुबानी वैध किया है, जिन्हे उसने पूर्व मार्गदर्शक और शिक्षक, शुभसूचक और डराने वाला बनाकर भेजा है, किन्तु वर्तमान समय में अन्तिम नबी (ईश्दूत, अवतार) मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का अनुसरण करे, जब वह इस परीक्षाओं और धार्मिक कर्तव्यों (बन्धनों) से घिरी हुई संसार में अपने दायित्व की पूर्ति करलेगा, तो उसका प्रतिफल और बदला प्रलोक में पाएगा, अल्लाह तआला का कथन है :

﴿يَوْمَ تَجِدُ كُلُّ نَفْسٍ مَا عَمِلَتْ مِنْ خَيْرٍ مُحْضَراً ﴾

[آل عمران: ٣٠]

(उस दिन को याद करो) **जिस दिन हर प्राणी जो कुछ उसने सत्कर्म किया है उसे अपने समक्ष उपस्थित पाएगा।** (सूरत आल-इम्रानः ३०).

इससे मनुष्य को अपने वजूद का बोध्द हो जाता है, और जीवन में उसके दायित्व और कर्तव्य का स्पष्ट रूप से पता चल जाता है, जिसे उसके लिए सृष्ट के रचयिता, जीवन दाता और मनुष्य के सृष्टा ने स्पष्ट कर दिया है।

जो व्यक्ति बिना धर्म - अल्लाह और प्रलोक के दिन पर विश्वास रखे बिना - जीवन यापन करता है वह वास्तव में अभागा और वंचित व्यक्ति है, वह स्वयं अपनी निगाह में एक पाशव (जानवर जैसा) प्राणी है, और वह किसी भी प्रकार से उन बड़े-बड़े जानवरों से विभिन्न (उच्च) नहीं है जो उसके चारों ओर धरती पर चलते फिरते हैं ... जो खाते पीते और (संसारिक) लाभ उठाते हैं और फिर मर जाते हैं, उन्हें अपने किसी उद्देश्य का पता नहीं होता है और न ही वह अपने जीवन का कोई रहस्य जानते हैं, निःसन्देह वह एक छोटा और साधारण सृष्टि है जिसका कोई भार और मूल्य नही है, वह पैदा तो होगया किन्तु उसे यह पता नहीं है किः वह कैसे पैदा हुआ है, और उसे किसने पैदा किया है, वह जीवन यापन कर रहा है किन्तु उसे यह ज्ञान नहीं कि वह क्यों जी रहा है ? वह मरता है किन्तु उसे यह ज्ञात नहीं कि वह क्यों मरता है ? और मरने के

पश्चात क्या होगा ? वह अपनी तमाम चीज़ोंः मरने और जीने, प्रारम्भ और अन्त के विषय में सन्देह-बल्कि अंधापन-के शिकार हैं।

उस मनुष्य का जीवन कितना ही अधिक कठोर और दयनीय है जो अपनी सर्वविशेष और प्रमुख चीज़ अर्थात अपने नफ़्स की वास्तविकता, अपने अस्तित्व की रहस्य और अपने जीवन के उद्देश्य के संबंध में सन्देह और विस्मय के जहन्नम, या अन्धापन और मूर्खता (जहालत) के घटातोप अंधेरों में जी रहा हो, वस्तुतः वह अभागा और निर्दय व दुखी मनुष्य है, यद्यपि वह सोने और रेशम में डूबा हुआ और आनन्द और सुख के उपकरणों से माला माल हो, सर्वोच्च उपाधिपत्रें (सनदें) रखता हो और ऊँची-ऊँची डिग्रियां (उपाधियां) प्राप्त किए हुए हो!

2- *मानव आकृति की आवश्यकताः*

इसी प्रकार भावना और चेतना को भी धर्म की आवश्यकता होती है, क्योंकि मनुष्य इलेक्ट्रॉनिक मस्तिष्क के समान केवल बुद्धि का नाम नहीं है, बल्कि वह बुद्धि, भावना व चेतना और आत्मा का नाम है, इसी प्रकार उसकी प्रकृति की रचना हुई है, और यही उसके प्रकृति की आवाज़ है, मनुष्य की यह फित्रत (प्रकृति) है कि

कोई ज्ञान और सभ्यता उसे सन्तुष्ट नहीं कर सकती, और कोई कला और साहित्य उसकी आकांक्षा को परिपूर्ण नहीं कर सकता, और न कोई सजावट (श्रृंगार) और उपकरण (धन-पूंजी) उसके शून्य-हृदय (हृदय के रिक्त-स्थान) की पूर्ति कर सकता है, बल्कि उसका दिल बेचैन, उसकी आत्मा भूखी और उसकी प्रकृति प्यासी रहती है और उसे रिक्तता और अभाव का गम्भीर एहसास रहता है, यहांतक कि वह अल्लाह के बार में आस्था और विश्वास को पालेता है, तब जाकर उसे बेचैनी के पश्चात सन्तुष्टि प्राप्त होती है, व्याकुलता के बाद शान्ति मिलती है, भय के बाद सुरक्षा का अनुभव होता है और उसके अन्दर यह एहसास जन्म लेता है कि उसने अपने आप को पा लिया है।

हमारे पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) फरमाते हैं :

((**ما من مولود إلا ويولد على الفطرة ، فأبواه يهودانه ، أو ينصراه ، أو يمجسانه**)).

“हर शिशु (पैदा होने वाला) फित्रत (इस्लाम की दशा) पर जन्म लेता है, फिर उसके माता-पिता

उसे यहूदी बना देते हैं, या उसे ईसाई बना देते हैं, या उसे मजूसी बना देते हैं।''

इस हदीस के अन्दर इस बात पर अधिक बल दिया गया है कि मनुष्य की मूल प्रकृति यह होती है कि वह अपने रब (पालनकर्ता) के समक्ष समर्पित करने वाला (विश्वास रखने वाला), और सच्चे धर्म को स्वीकार करने के लिए तैयार होता है, और उस फित्रत से बातिल (मिथ्य, असत्य) धर्म की ओर अपने आस पास की प्रशिक्षण प्रस्थितियों के कारण ही विमुख होता है, चाहे उसका स्रोत माता-पिता हों, या शिक्षक हों, या वातावरण हो या इनके अतिरिक्त अन्य कोई चीज़ हो।

फिलास्फर (दार्शिनिक) ''**अगोस्त सियातियह**'' अपनी पुस्तक ''धर्मों का फलसफा'' (धर्म-शास्त्र) में लिखता है:

''मैं धर्म निष्ठ क्यों हूं ? मैं इस प्रश्न के साथ अपने ओठ को एक बार भी हिलाता हूं तो अपने आपको इस प्रश्न का यह उत्तर देने पर विवश पाता हूं, वह यह किः मैं धर्म निष्ठ हूं , इसलिए कि मैं इसके विरूध की शक्ति नहीं रखता, इसलिए कि धर्म निष्ठ होना मेरे अस्तित्व की आवश्यकताओं में से एक मानसिक (आध्यात्मिक) आवश्यकता (अंश) है, लोग मुझसे कहते हैं कि : यह

पुश्तैनी (खान्दानी) गुणों, अथवा प्रशिक्षण, अथवा स्वभाव का प्रभाव है, मैं उनसे कहता हूं : मैं ने बहुधा ठीक इन्हीं आपत्तियों (एतराज़ात) के द्वारा अपने नफ़्स पर आपत्ति व्यक्त की है, किन्तु मैं ने पाया है कि वह समस्या को परास्त कर (दबा) देता है और उसकी कोई व्याख्या नहीं कर पाता (या उसका कोई उत्तर नहीं देता) है।''

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हमें यह आस्था और धारणा (अक़ीदा) हर जातियों में , चाहे वह प्राचीन (असभ्य) ज़ातियां हों या सभ्य, और हर महाद्वीप में, चाहे व पूरबी महाद्वीप हो या पच्छिमी, और हर युग में, चाहे वह प्राचीन काल हो या वर्तमान युग, दिखाई देता है, यह और बात है कि अधिकांश लोग सीधे मार्ग से भटक गए।

यूनानी इतिहासकार ''**ब्लूतार्क**'' (**BLUTARCH**) का कहना है :

मैं ने इतिहास में बिना क़िलों के नगरों को, बिना महलों के नगरों को, बिना पाठशालाओं के नगरों को तो पाया है, किन्तु बिना पूजास्थलों और इबादतगाहों के नगर कभी नहीं पाये गए।

3- मनुष्य की मानसिक स्वस्थ और आत्मिक शक्ति की आवश्यकता :

धर्म के लिए एक अन्य आवश्यकता भी है : एक ऐसी आवश्यकता जिसका तक़ाज़ा मनुष्य की जीवन और उसके अन्दर उसकी आकांक्षाएं व आशाएं और उसकी पीड़ायें और यातनाएं करती हैं ... मनुष्य की एक ऐसे शक्तिमान स्तम्भ की आवश्यकता जिसकी ओर वह शरण ले सके, एक सशक्त आधार और सहारे की आवश्यकता जिस पर वह भरोसा कर सके, जिस समय वह कठिनाईयों से ग्रस्त हो, जब उसके यहां दुर्घटनाएं घटें, जब वह अपनी प्रिय चीज़ से हाथ धो बैठे, या अप्रिय चीज़ का सामना करे, या उस पर ऐसी चीज़ टूट पड़े जिसका उसे भय और डर हो। ऐसी प्रस्थिति में धार्मिक आस्था व धारणा अपना किरदार निभाती है, चुनांचे उसे कमज़ोरी के समय शक्ति, निराशा की घड़ियों में आशा, भय के छणों में अम्मीद, और कठिनाईयों और कष्टियों तथा संकट के समय धैर्य प्रदान करती है।

अल्लाह तआला, और उसके न्याय और उसकी कृपा में आस्था रखना, तथा क़ियामत के दिन उसके समक्ष प्रस्तुत किये जाने और उसके पास सदैव बाक़ी रहने

वाले घर जन्नत में बदला दिए जाने पर विश्वास (आस्था) रखना, मनुष्य को मानसिक स्वस्थ और आत्मिक शक्ति प्रदान करता है, फिर तो उसके अस्तित्व में हर्ष व आनन्द की किरण फूट पड़ती है, उसकी आत्मा आशा से परिपूर्ण होजाती है, उसकी आँखों में संसार का क्षेत्र विस्तृत होजाता है, वह जीवन को उज्जवल दृष्टि से देखने लगता है और वह अपने सन्छिप्त अस्थायी जीवन में जो कष्ट सहता और जिन चीज़ों का सामना करता है वह सब उस पर सरल होजाता है, और उसे ऐसे ढारस, आशा और शान्ति का अनुभव होता है जिसका स्थान न तो कोई ज्ञान और न दर्शन-शास्त्र, न कोई धन-पूंजी और न सन्तान, और न ही पूरब और पच्छिम का शासन, ग्रहण कर सकता है और न ही उसके किसी काम आसकता है।

किन्तु वह व्यक्ति जो अपने संसार में बिना किसी ऐसे धर्म के और बिना किसी ऐसे विश्वास के जीता है, जिससे वह अपनी तमाम समस्याओं में निर्देश प्राप्त कर सके, उससे किसी चीज़ के बारे में धार्मिक आदेश ज्ञात करे तो वह उसका आदेश बतलाए, उससे प्रश्न करे तो उसका उत्तर दे, उससे सहायता मांगे तो उसकी सहायता करे और उसे ऐसी सहायता और सहयोग प्रदान करे जो

परास्त न हो और निरंतर रहने वाली हो, - जो व्यक्ति इस विश्वास और आस्था से परे जीवन व्यतीत करता है- वह इस अवस्था में जीता है कि उसका हृदय बेचैन होता है, उसकी सोच-विचार चकित होती है, और उसकी अभिरूचि परागन्दा होती है और उसका अस्तित्व भंग और टुकड़े-टुकड़े होता है, कुछ नीति शास्त्रों न ऐसे व्यक्ति को दुर्भागी (**राक़ायाक**) के समान ठहराया है, जिसके बारे में बयान करते हैं कि उसने बादशाह की हत्या करदी, तो उसका दण्ड यह निर्धारित किया गया था कि उसके दोनों हाथों और दोनों पावों को चार घोड़ों में बांध दिया जाए, फिर उनमें से प्रत्येक के पीठ पर लाठियां बरसाई गईं ताकि उन में से हर एक चारों दिशाओं में से किसी एक दिशा में तेज़ी से भागे, यहां तक कि उसके शरीर को बुरी तरह टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया!

यह घृणित शारीरिक तौर पर टुकड़े-टूकड़े होना उस मानसिक रूप से भंग होने के समान है जिससे वह व्यक्ति पीड़ित होता है जो बिना किसी धर्म के जीता है, और शायद दूसरी हालत गम्भीर मुद्रा वाले ज्ञानियों के दृष्टि में पहली हालत से अधिक कठोर, दयनीय और घातक है, क्योंकि इस भंग का प्रभाव कुछ पलों और

छणों में समाप्त नहीं होता है, बल्कि वह एक यातना है जिसकी अवधि लम्बी होती है, और जो व्यक्ति उससे पीड़ित है उसका वह जीवन भर साथ नहीं छोड़ती है।

अतः हम देखते हैं कि वह लोग जो बिना सदृढ़ विश्वास और आस्था (अक़ीदा) के जीवन बिताते हैं वह दूसरे लोगों से अधिकतर मानसिक बेचैनी, मांसपेशिक तनाव (घबराहट) दिमाग़ी उलझन व व्याकुलता के शिकार होते हैं, जब उन्हें जीवन के दुर्भाग्यों और संकटों का सामना होता है तो वह अति शीघ्र विध्वंस होजाते हैं, फिर या तो वह जल्द ही आत्म हत्या कर लेते हैं, और या तो मानसिक रोगी बन कर जीवित लोगों के रूप में मृतकों के समान जीवन व्यतीत करते हैं ! जैसाकि प्राचीन अरबी कवि ने इसको रेखांकन किया है :

वह व्यक्ति जो मर कर विश्राम पाजाए वह मुर्दा नहीं है, वास्तव में मुर्दा वह है जो जीवित रहकर भी मुर्दा हो, मुर्दा तो वह व्यक्ति है जो दुखी, शोक-ग्रस्त, मृत-हृदय और निराश होकर जीवन बिताता है।

इसी बात को वर्तमान काल में मानसशास्त्रियों और मानसिक रोगों की चिकित्सा करने वालों ने सिद्ध किया

है और इसी बात को सर्व संसार में विचारकों और समालोचकों ने प्रमाणित किया है।

डॉक्टर **कार्ल पांज** अपनी पुस्तक ''वर्तमान युग का मनुष्य अपने नफ़्स की तलाश में हैं'' में कहता हैं कि:

''पिछले तीस वर्षों के दौरान पूरी दुनिया के जिन रोगियों ने भी मुझसे प्रामर्श किया है, उन सबके बीमारी का कारण उनके विश्वास का अभाव और उनके अक़ीदे का अदृढ़ और डांवां-डोल होना था, और उन्हें स्वास्थ उसी समयं प्राप्त हुआ जब उन्हों ने अपने ईमान को पुनः स्थापित और पुनर्जीवित कर लिया।''

लाभ एवं संसाधन शास्त्र विज्ञानी **''विलियम जेम्स''** का कहना है:

''चिन्ता और शोक का सबसे महान उपचार -निःसन्देह- ईमान और विश्वास है''।

डॉक्टर **''बिरियल''** का कथन है:

''निःसन्देह वास्तविक रूप से धर्म निष्ठ व्यक्ति कभी भी मानसिक बीमारियों से ग्रस्त नहीं होता।''

तथा डॉक्टर **''डील कारनीजी''** अपनी पुस्तक (चिन्ता छोड़ो और जीवन का आरम्भ करो) में कथित है:

"मानसशास्त्र विज्ञानी जानते हैं कि दृढ़ विश्वास और धर्म निष्ठता, यह दोनों शोक व चिन्ता और मानसिक तनाव को समाप्त कर देने और इन बीमारियों से स्वास्थ प्रदान करने के ज़ामिन हैं।"

4 - *समाज की प्रेरकों (प्रोत्साहनों) और आचरण के नियमों व व्यवहार संहिता की आवश्यकताः*

धर्म के लिए एक अन्य आवश्यकता भी है: और वह है सामाजिक आवश्यकता, अर्थात समाज को प्रेरकों और नियमों व ज़ाब्तों की आवश्यकता है, अर्थात ऐसे प्रेरक जो समाज के हर व्यक्ति को भलाई का काम करने और कर्तव्य का पालन करने पर उभारें, यद्यपि कोई व्यक्ति उनकी निगरानी (निरीक्षण) करने वाला, या उनको बदला (इनाम) देने वाला मौजूद न हो, ... और ऐसे ज़ाब्ते और संहिताएं जो संबंधों और सम्पर्कों का नियन्त्रण करें और हर एक को इस बात का बाध्य करें कि वह अपनी सीमा से आगे न बढ़े, और अपने मन की इच्छाओं (शह्वतों) या शीघ्र प्राप्त होने वाले भौतिक लाभ के कारणवश दूसरे के अधिकार पर आक्रमण न करे, या

अपने समाज के कल्याण व हित में लापरवाही (उपेक्षा) से काम न ले।

यह नहीं कहा जासकता किः नियम और विधेयक इन ज़ाब्तों और संहिताओं और उन प्रेरकों के अविष्कार के लिए पर्याप्त हैं, क्योंकि नियम किसी प्रेरक और प्रोत्साहन को जन्म नहीं दे सकते, और न ही ज़ाब्ते के लिए पर्याप्त हो सकते हैं, इसलिए कि उन (नियमों) से छुटकारा पाना सम्भव है, और उसके साथ चालबाज़ी करना और बहाना बनाना सरल है, इसलिए ऐसे प्रेरकों और व्यवहार संहिता व आचरण के ज़ाब्तों का होना आवश्यक है जो मनुष्य के हृदय के भीतर से काम करते हों उसके बाहर से नहीं, इस आन्तरिक प्रेरक और इस आत्मसंयम का होना आवश्यक है, ''अन्तरात्मा'', या ''भावना'', या ''हृदय'' का होना आवश्यक है -आप उसका कुछ भी नाम देदें- सो वही वह शक्ति है जोकि जब शुद्ध होती है तो मनुष्य का पूरा कर्म शुद्ध रहता है, और जब वह दुष्ट होजाती है तो सारा कर्म दुष्ट होजाता है।

लोगों को मुशाहिदा, अनुभव और साहित्य के पढ़ने से यह ज्ञात हो चुका है कि अन्तरात्मा का प्रशिक्षण करने, और आचरण को पवित्र व शुद्ध करने, और ऐसे

प्रेरक और प्रोत्साहन जो भलाई का काम करने पर उभारने वाले हों और ऐसे ज़ाब्ते और संहिता जो बुराई से रोकने वाले हों, की रचना करने में धार्मिक विश्वास के समान कोई और चीज़ नहीं है, यहां तक कि ब्रिटेन में कुछ वर्तमान जज - जिन्हें विज्ञान की उन्नति, सभ्यता के विस्तार और नियमों की शुद्धता और यथार्थता के बावजूद, भयानक अपराध ने भयभीत कर दिया - कह पड़े :

''आचरण और व्यवहार के बिना कोई संविधान और क़ानून नहीं पाया जा सकता, और बिना ईमान और विश्वास के कोई आचरण परवान नहीं चढ़ सकता''।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि स्वयं कुछ नास्तिकों और अधर्मियों ने यह स्वीकार किया है कि धर्म के बिना, अल्लाह और प्रलोक में बदला दिये जाने पर विश्वास रखे बिना जीवन स्थिर और स्थापित नहीं रह सकती, यहां तक कि **''फोल्तियर''** का कथन है :

''यदि अल्लाह का अस्तित्व न होता तो हमारे ऊपर अनिवार्य होता कि हम उसे पैदा करें !''

अर्थात हम लोगों के लिए एक 'इलाह' (पूज्य) का अविष्कार करें जिसके कृपा की वह आशा रखें, उसके

अज़ाब (यातना) से डरें, और सत्कर्म करते हुए तथा दुष्टकर्म से बचते हुए उसकी प्रसन्नता तलाश करें। और एक बार ठठोल करते हुए कहता है :

''तुम अल्लाह के अस्तित्व में क्यों सन्देह प्रकट करते हो, यदि वह -अल्लाह- न होता तो मेरी पत्नी मेरे साथ विश्वास घात करती, और मेरा नौकर मेरी चोरी कर लेता''!!

और ''**ब्लूतार्क**'' का कथन है :

''बिना धरती के एक नगर को स्थापित करना, बिना इलाह (पूज्य) के एक राष्ट्र को स्थापित करने से अधिक आसान है''!!

इस्लामी अक़ीदा (आस्था) की विशेषताएं

इस्लामी अक़ीदा ऐसी विशेषताओं और गुणों का वाहक है जो अन्य धारणाओं में नहीं है, जो निम्नलिखित चीज़ों से प्रदर्शित होता हैः

❶- स्पष्ट अक़ीदाः

यह एक स्पष्ट और आसान अक़ीदाः (धारणा) है जिसके अन्दर कोई पेचीदगी और उलझाव नहीं है, जिसका सारांश यह है कि इस अनुपम, प्रबंधित, व्यवस्थित और दृढ़ संसार के परे एक रब (पालनहार, प्रभु) है जिसने इसे पैदा किया है और इसे व्यवस्थित किया है, और इसमें हर चीज़ को एक अनुमान और अंदाज़े से पैदा किया है, और यह 'इलाह'-पूज्य- या रब इसका कोई साझी नहीं और न इसके समान कोई चीज़ है, और न ही इसके बीवी बच्चे हैं :

﴿ بَلْ لَهُ مَا فِي السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ كُلٌّ لَهُ قَانِتُونَ﴾ [البقرة: ١١٦].

बल्कि आकाश और धर्ती की सारी चीज़ें उसी के अधिकार में हैं और हर एक उसका आज्ञाकारी है।(सूरतुल-बक़रः ११६).

यह एक स्पष्ट और स्वीकारने योग्य अक़ीदह है, क्योंकि बुद्धि सदैव भिन्नता (अनेकता) और अधिकता के परे एकता और संबंध का तक़ाज़ा करती है, और सारी चीज़ों को सदा एक ही कारण के ओर लौटाना चाहती है।

❷- *प्राकृतिक (फित्रती) अक़ीदा*ः

यह एक ऐसा अक़ीदह है जो फित्रत से विचित्र और उसके विरूध नहीं है, बल्कि यह उसी प्रकार फित्रत के अनुसार (मुताबिक़) है जिस प्रकार कि निर्धारित कुंजी अपने दृढ़ ताले के अनुसार होती है, और क़ुरआन इसी तत्व को स्पष्ट रूप से खुल्लम-खुल्ला बयान करता है :

﴿فَأَقِمْ وَجْهَكَ لِلدِّينِ حَنِيفاً فِطْرَتَ اللَّهِ الَّتِي فَطَرَ النَّاسَ عَلَيْهَا لا تَبْدِيلَ لِخَلْقِ اللَّهِ ذَلِكَ الدِّينُ الْقَيِّمُ وَلَكِنَّ أَكْثَرَ النَّاسِ لا يَعْلَمُونَ﴾ [الروم:٣٠].

सो आप एकांत होकर अपना मुख दीन की ओर मुतवज्जेह कर दें। अल्लाह तआला की वह फित्रत

जिस पर उसने लोगों को पैदा किया है, अल्लाह तआला के बनाए हुए को बदलना नहीं, यह सीधा दीन है, किन्तु अधिकांश लोग नहीं समझते। (सूरतुर-रूमः ३०).

और इसी हक़ीक़त को हदीसे नबवी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने भी स्पष्ट किया है:

((كل مولود يولد على الفطرة – أي على الإسلام – وإنما أبواه يهودانه أو ينصرانه أو يمجسانه)).

''हर पैदा होने वाला (शिशु) फित्रत -अर्थात इस्लाम- पर पैदा होता है, किन्तु उसके माता-पिता उसे यहूदी बना देते हैं, या ईसाई बना देते हैं, या मजूसी (आतिश परस्त) बना देते हैं।''

इस से मालूम हुआ कि इस्लाम ही अल्लाह तआला की फित्रत है, इसलिए माता-पिता के प्रभाव की आवश्यकता नहीं है।

जहाँ तक अन्य धर्मों जैसे कि यहूदियत, ईसाईयत और मजूसियत का संबंध है तो यह माता-पिता के सिखाए हुए धर्म हैं।

❸- ठोस और सदृढ़ अक़ीदा:

यह एक ठोस व सदृढ़ और नियमित व निर्धारित अक़ीदा है, जिसमें किसी कमी और ज़ियादती, परिवर्तन और हेर-फेर की गुंजाईश नहीं है, इसलिए किसी हाकिम (शासक), या वैज्ञानिक संस्था, या धार्मिक सम्मेलन को यह अधिकार नहीं है कि वह उसमें कोई चीज़ बढ़ाये या उसमें कोई संशोधन और परिवर्तन करे, और हर प्रकार की ज़ियादती या संशोधन व परिवर्तन उसके करने वाले के मुंह पर मार दिया जाए गा, नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

((من أحدث في أمرنا هذا ما ليس منه فهو رد)).

''जिसने हमारे इस मामले में कोई नई चीज़ निकाली वह मर्दूद (अस्वीकारनीय) है।''

अर्थात उसी के ऊपर लौटा दिया जायेगा।

और क़ुरआन इसे नकारते हुए कहता है:

﴿أَمْ لَهُمْ شُرَكَاءُ شَرَعُوا لَهُمْ مِنَ الدِّينِ مَا لَمْ يَأْذَنْ بِهِ اللَّهُ﴾ [الشورى: ٢١].

क्या उन लोगों ने (अल्लाह के) ऐसे साझी बना रखे हैं जिन्होंने उनके लिए दीन के ऐसे अहकाम निर्धारित कर दिए हैं जो अल्लाह तआला के फरमाए हुए नहीं हैं। (सूरतुश-शूराः २१).

इस आधार पर, हर प्रकार की बिद्अतें, कहानियां और खुराफात जो मुसलमानों की कुछ किताबों में सम्मिलित कर दी गई हैं, या उनके जन-साधारण के बीच फैलाई गई हैं, वह बातिल, असत्य और अस्वीकारनीय (ना क़ाबिले क़बूल) हैं, इस्लाम उसे प्रमाणित नहीं करता है, और न ही उसे इस्लाम के विरूध प्रमाण और तर्क के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

❹- *प्रमाणित (दलीलों से साबित) अकीदा*ः

यह एक प्रमाणित अक़ीदा है, जो अपने मसाईल को सिद्ध करने में केवल पाबन्दी, और ठेठ तकलीफ (बाध्य करने) पर ही बस नहीं करता है, और दूसरे अक़ीदों और धारणाओं के समान यह नहीं कहता है कि :

''अन्धे होकर विश्वास (श्रद्धा) रखो।''

या यह कि:

"पहले विश्वास करो फिर ज्ञान प्राप्त करो।"

या यह कि:

"अपनी दोनों आंखों को मूंद लो फिर मेरी पैरवी करो।"

या यह कि:

"अज्ञानता (जिहालत) तक़्वा और परहेज़गारी की जड़-बुनियाद है।"

बल्कि उसकी किताब स्पष्ट रूप से कहती है :

﴿قُلْ هَاتُوا بُرْهَانَكُمْ إِنْ كُنْتُمْ صَادِقِينَ﴾

[البقرة:١١١].

इनसे कहो कि यदि तुम सच्चे हो तो कोई प्रमाण पेश करो। (सूरतुल-बक्रहः १११)

इसी प्रकार केवल दिल, और आत्मा को सम्बोधित करने और अक़ीदे के लिए बुनियाद के तौर पर उन पर भरोसा करने पर बस नहीं करता है, बल्कि अपने मसाईल को अखण्डनीय (विश्वस्त, प्रबल) प्रमाण, रौशन दलील और स्पष्ट तर्क (तमेंवदपदह) के साथ पेश करता

है, जो बुद्धियों के बाग डोर को अपने कब्ज़े में कर लेता है और दिलों तक अपना रास्ता बना लेता है, अक़ीदा के उलमा कहते हैं:

अक़्ल (बुद्धि) नक़्ल (वह बातें जिनका आधार रिवायत या सिमाअ है) की बुनियाद है, और सहीह नक़्ल (मन्क़ूलात) स्पष्ट अक़्ल (विवेक, बुद्धि) के विरूध नहीं होता है।

चुनांचे हम देखत हैं कि क़ुरआन उलूहियत (इबादत) के मसअले में संसार से, नफ़्स (आत्मा) से और इतिहास से, अल्लाह तआला के वजूद, उसकी वह्दानियत (एकत्व) और उसके कमाल (सम्पूर्णता) पर दलीलें स्थापित करता है।

और बअ्स (मरने के उपरान्त पुनः जीवित किए जाने) के मसअले में उसके दुबारा जीवित होने की सम्भावना पर मनुष्य को प्रथम बार पैदा करने, आसमानों और ज़मीन को पैदा करने, और मुर्दा ज़मीन को ज़िन्दा (हरी-भरी) करने के द्वारा तर्क स्थापित करता है, और उसकी हिकमत (रहस्य) पर, भलाई करने वाले को सवाब (प्रतिफल) देने और बुराई करने वाले को

सज़ा (यातना) देने में खुदाई (ईश्वरीय) न्याय और इन्साफ के द्वारा तर्क स्थापित करता है :

﴿لِيَجْزِيَ الَّذِينَ أَسَاءُوا بِمَا عَمِلُوا وَيَجْزِيَ الَّذِينَ أَحْسَنُوا بِالْحُسْنَى﴾ [النجم: ٣١]

ताकि अल्लाह तआला बुरे कर्म करने वालों को उनके कर्मों का बदला दे, और सत्कर्म करने वालों को अच्छा प्रतिफल प्रदान करे। (सूरतुन-नज्मः ३१)

एतिक़ाद (आस्था) के अन्दर इस्लाम की मध्यता

इस्लामी अक़ीदा कई मसाईल और बहुत से पहलुओं में मध्यता (संतुलन) के द्वारा दूसरे धर्मों के अक़ीदों से सर्वश्रेष्ठ और भिन्न है, यह विशेषता उसे आसान अक़ीदा और सन्तुष्टि के क़ाबिल बना देता है, जो स्वीकारने और पैरवी करने के योग्य है, इस विशेषता और भिन्नता के प्रदर्शन को जानने के लिए मेरे साथ आगे आने वाली पंक्तियों को पढ़ें :

①- इस्लाम उन ख़ुराफातियों (मिथ्यावादियों, मूढ़ विश्वास रखने वालों) के बीच जो एतिक़ाद के अन्दर सीमा को पार कर जाते हैं, चुनांचे वह हर चीज़ को सच्चा मान लेते हैं और बिना प्रमाण के उस पर विश्वास रखते हैं, और उन भौतिकवादियों के बीच एतिक़ाद के अन्दर मध्यस्थ (संतुलित) है, जो हिस (चेतना) के परे सारी चीज़ों को नकारते हैं, और फितरत

की आवाज़, बुद्धि की पुकार, और मोजिज़ा (चमत्कार) की चींख को नहीं सुनते हैं।

चुनांचे इस्लाम एतिक़ाद और विश्वास की दावत देता है, किन्तु केवल उसी पर जिस पर क़तई दलील और निश्चित प्रमाण स्थापित हो, और इसके अतिरिक्त जो चीज़े हैं उसे नकारता और अवहाम (भ्रम) शुमार करता है, और सदा उसका यह नारा है :

﴿ قُلْ هَاتُوا بُرْهَانَكُمْ إِنْ كُنْتُمْ صَادِقِينَ﴾

[البقرة:١١١].

यदि तुम सच्चे हो तो अपने प्रमाण लाकर पेश करो। (सूरतुल-बक़राः १११)

②-वह मध्यस्थ (संतुलित) है उन मुलहिदों (अधर्मियों) के बीच जो किसी भी इलाह (पूज्य) को नहीं मानते हैं, अपने सीनों में फित्रत की आवाज़ को दबा देते हैं, और अपने सरों में बुद्धि के तर्क (पुकार) को चैलेंज करते हैं ... और उन लोगों के बीच जो अनेक माबूदों (ईश्वरों) को मानते हैं, यहांतक कि वह बकरियों और गायों को भी पूजने लगे और बुतों (मूर्तियों) और पत्थरों को ईश्वर बना लिया।

चुनांचे इस्लाम एक इलाह (पूज्य) पर विश्वास रखने की दावत देता है जिसका कोई साझी नहीं, न उसने किसी को जना है और न वह किसी से जना गया है, और न कोई उसका हमसर (समवर्ती) है। और उसके अतिरिक्त जो लोग भी हैं और जो भी चीज़ें हैं वह पैदा की गई (मख्लूक़) हैं, वह लाभ और हानि, मौत और ज़िन्दगी और दुबारा जीवित होने का अधिकार नहीं रखते हैं, इसलिए उनको पूज्य बनाना शिर्क, अत्याचार और स्पष्ट गुमराही (अन्ध विश्वास) है:

﴿وَمَنْ أَضَلُّ مِمَّنْ يَدْعُو مِنْ دُونِ اللَّهِ مَنْ لا يَسْتَجِيبُ لَهُ إِلَى يَوْمِ الْقِيَامَةِ وَهُمْ عَنْ دُعَائِهِمْ غَافِلُونَ﴾ (الأحقاف:٥)

और उस व्यक्ति से बढ़कर गुमराह कौन होगा? जो अल्लाह के सिवा ऐसों को पुकारता है जो क़ियामत तक उसकी प्रार्थना स्वीकार न कर सकें, बल्कि उनके पुकारने से मात्र बेखबर (निश्चेत) हों।
(सूरतुल-अह्क़ाफः ५)

③- और वह मध्यस्थ (संतुलित) है उन लोगों के बीच जो संसार को ही अकेला सत्य अस्तित्व समझते हैं, और इसके अतिरिक्त जो चीज़ें हैं जिसे न आंख देखती

है और न हाथ छू सकता है उसे मिथ्यावाद ,खुराफात और भ्रम समझते हैं, ... और उन लोगों के बीच जो संसार को एक वह्म (भ्रम) समझते हैं जिसकी कोई हक़ीक़त नहीं, उसे चटियल मैदान में चमकती हुई रेत के समान समझते हैं जिसे प्यासा व्यक्ति दूर से पानी समझता है, किन्तु जब उसके पास पहुंचता है तो उसे कुछ भी नहीं पाता।

चुनांचे इस्लाम संसार के वजूद को एक वास्तविकता -हक़ीक़त- समझता है जिसमें कोई सन्देह नहीं है, किन्तु वह इस हक़ीकत से एक दूसरी हकीक़त की ओर सफर करता है जो इससे अधिक बड़ी हकीकत है, और वह है : वह ज़ात (हस्ती) जिसने इस संसार का निर्माण किया है, इसे व्यवस्थित किया है और इसका संचालन करने वाला है, और वह अल्लाह तआला की ज़ात है:

﴿إِنَّ فِي خَلْقِ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ وَاخْتِلافِ اللَّيْلِ وَالنَّهَارِ لَآياتٍ لِأُولِي الْأَلْبَابِ ○الَّذِينَ يَذْكُرُونَ اللَّهَ قِيَاماً وَقُعُوداً وَعَلَى جُنُوبِهِمْ وَيَتَفَكَّرُونَ فِي خَلْقِ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ رَبَّنَا مَا خَلَقْتَ هَذَا بَاطِلاً سُبْحَانَكَ فَقِنَا عَذَابَ النَّارِ﴾ [آل عمران:١٩٠- ١٩١]

आसमानों और ज़मीन की रचना में और रात दिन के हेर-फेर में सच-मुच बुद्धिमानों के लिए निशानियां हैं। जो अल्लाह तआला का ज़िक्र खड़े और बैठे और अपनी करवटों के बल लेटे हुए करते हैं और आसमानों और धर्ती की पैदाईश में सोच-विचार करते हैं, और कहते हैं ऐ हमारे परवरदिगार! तू ने यह निरर्थक नही बनाया, तू पाक है, सो हमें आग के अज़ाब (यातना) से बचाले। (सूरत आल-इम्रानः १९०-१९१)

④-वह वसत (मध्यस्थ, संतुलित) है उन लोगों के बीच जो मनुष्यों को पूज्य -इलाह- बना लेते हैं, और उन्हें रूबूबियत की विशेषताओं से सम्मानित करते हैं और उन्हें स्वयं अपना इलाह (पूज्य, ईश्वर) समझते हैं, वह जो चाहता है करता है और जो चाहता है फैसिला करता है, और उन लोगों के बीच मध्यस्थ (संतुलित) है जिन्होंने उसे आर्थिक, या समाजी या धार्मिक व्यवस्थाओं और क़ानूनों का बन्दी बना दिया है, सो उसकी मिसाल (उदाहरण) हवा के झोंके में पर (पंख) के समान, या कठ पुतली के समान है जिसके धागों को समाज, या इक़्तिसाद या भाग्य हिला रहा है।

चुनांचे इस्लाम की दृष्टि (निगाह) में मनुष्य एक ज़िम्मेदार और मुकल्लफ (उत्तरदाता, नियम बद्ध) मख्लूक़ है, संसार में सरदार है, अल्लाह का एक बन्दा है और अपने आस पास की चीज़ों को बदलने की उतना ही शक्ति रखता है जितना की उसके अन्दर अपने आपको बदलने की शक्ति है, (अल्लाह तआला का फरमान है):

﴿ إِنَّ اللَّـهَ لا يُغَيِّرُ مَا بِقَوْمٍ حَتَّى يُغَيِّرُوا مَا بِأَنْفُسِهِمْ ﴾ [الرعد: ١١].

निः सन्देह अल्लाह तआला किसी क़ौम की हालत नहीं बदलता जब तक कि वह स्वयं उसे न बदलें जो उनके दिलों में है। (सूरतुर-रॉदः११).

⑤- वह वसत (संतुलित) है उन लोगों के बीच जो नबियों (ईश्दूतों) को मुक़द्दस (पवित्र) मानते हैं, यहांतक कि उन्होंने उन्हें उलूहियत (ईश्वरता) या ईलाह -ईश्वर- के पुत्रत्व के पद पर पहुंचा दिया, और उन लोगों के बीच वसत (मध्यस्थ) है जिन्हों ने उन्हें झुठलाया, उन पर (झूठा) आरोप लगाया, और उन पर यातनाओं के पहाड़ तोड़े।

अंबिया (ईश्दूत, पैग़म्बर) हमारे समान एक मनुष्य हैं, खाना खाते हैं और बाज़ारों में चलते-फिरते हैं, और उनमें से अधिकांश के पास बीवी-बच्चे भी हैं, उनके और उनके अतिरिक्त अन्य लोगों के बीच मात्र अन्तर यह है कि अल्लाह तआला ने उन पर वह्य (ईश्वाणी) के द्वारा उपकार किया है, और मोजिज़ात (चमत्कारों) के द्वारा उनका समर्थन और सहयोग किया है :

﴿قَالَتْ لَهُمْ رُسُلُهُمْ إِنْ نَحْنُ إِلَّا بَشَرٌ مِثْلُكُمْ وَلَكِنَّ اللَّهَ يَمُنُّ عَلَى مَنْ يَشَاءُ مِنْ عِبَادِهِ وَمَا كَانَ لَنَا أَنْ نَأْتِيَكُمْ بِسُلْطَانٍ إِلَّا بِإِذْنِ اللَّهِ وَعَلَى اللَّهِ فَلْيَتَوَكَّلِ الْمُؤْمِنُونَ﴾ [إبراهيم:١١].

उनके पैग़म्बरों ने उनसे कहा कि यह तो सच्च है कि हम तुम जैसे ही इंसान हैं किन्तु अल्लाह तआला अपने बन्दों में से जिस पर चाहता है अपनी अनुकम्पा करता है, अल्लाह के हुक्म (अनुमति) के बिना हमारे बस की बात नहीं कि हम तुम्हें कोई मोजिज़ा (चमत्कार) दिखाएं, और ईमानवालों को केवल अल्लाह तआला ही पर भरोसा रखना चाहिए। (सूरत-इब्राहीमः११).

⑥ - वह वसत है उन लोगों के बीच जो संसार की हक़ीक़तों (वास्तविकताओं) की जानकारी प्राप्त करने के स्रोत की हैसियत से केवल बुद्धि (अक़्ल) पर विश्वास करते हैं, और उन लोगों के बीच वसत है जो केवल वह्य और इल्हाम पर विश्वास करते हैं, और किसी चीज़ को नकारने या स्वीकारने में बुद्धि के रोल (योगदान) को नहीं मानते हैं।

जबकि इस्लाम बुद्धि पर विश्वास करता है, और सोच-विचार और ग़ौर व फिक्र करने की दावत देता है, और उसके अन्दर जुमूद (कठोरता) और तक़्लीद (अनुकरण) को नकारता है, और उसे आदेशों और निषेधों से सम्बोधित करता है, और संसार की दो महान वास्तविकताओं : अल्लाह तआला का वजूद और नुबुव्वत के दावे की सच्चाई को सिद्ध करने में उस पर भरोसा करता है, किन्तु वह वह्य पर इस हैसियत से विश्वास रखता है कि वह बुद्धि की पूर्ति करने वाली है और उन चीज़ों में उसकी सहायक और मदद्गार है जिसमें बुद्धियां भटक जाती हैं और मतभेद का शिकार होजाती हैं, और जिन पर शहवतों और ख्वाहिशात का दबाव और बल बढ़ जाता है, और उसकी उस चीज़ की ओर मार्गदर्शक और रहनुमाई करने वाली है जो उस से संबंधित नहीं है

और जो उसके बस में नहीं है, जैसे कि ग़ैबिय्यात (अदृश्य चाज़ें), समईय्यात (वह बातें जिनका आधर वह्य हो जैसे जन्नत, जहन्नम आदि) और अल्लाह तआला की इबादत के तरीक़े, और दुनिया में भलाई और बुराई करने पर, मरने के बाद दूसरी दुनिया में सवाब और सज़ा के रूप में न्याय पूर्ण खुदाई (ईश्वरीय) बदला दिये जाने पर विश्वास रखने में, इस फितरी और असली एहसास को तक़वियत (समर्थन) मिलती है कि उस बद्कार और अत्याचार से बदला लेना अनिवार्य और आवश्यक है जिसने दुनियावी अदालत (सांसारिक न्याय) से अपना हाथ छुड़ा लिया है, और उस व्यक्ति को सवाब मिलना आवश्यक है जिसने भलाई और नेकी की है और उसका प्रचारक रहा है, और उसे नकीर (घृणा, नकारता) और अत्याचार (उत्पीड़न) के सिवा कुछ नहीं मिला है ... तथा सदाचारियों और दुराचारियों, नेक लोगों और बुरे लोगों, सुधार करने वालों और भ्रष्टाचारियों के बीच बराबरी न की जाए :

﴿أَمْ حَسِبَ الَّذِينَ اجْتَرَحُوا السَّيِّئَاتِ أَنْ نَجْعَلَهُمْ كَالَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ سَوَاءً مَحْيَاهُمْ وَمَمَاتُهُمْ سَاءَ مَا يَحْكُمُونَ وَخَلَقَ اللَّهُ السَّمَاوَاتِ

وَالْأَرْضَ بِالْحَقِّ وَلِتُجْزَى كُلُّ نَفْسٍ بِمَا كَسَبَتْ وَهُمْ لَا يُظْلَمُونَ﴾[الجاثية: ٢١- ٢٢].

क्या उन लोगों का जो बुरे काम करते हैं यह गुमान है कि हम उन्हें उन लोगों जैसा कर देंगे जो ईमान लाए और नेक काम किए कि उनका मरना जीना बराबर होजाए, बुरा है वह फैसिला जो वह कर रहे हैं। और आसमानों और ज़मीन को अल्लाह ने बहुत न्याय के साथ पैदा किया है और ताकि हर व्यक्ति को उसके किए हुए काम का पूरा बदला दिया जाए और उन पर अत्याचार न किया जाए। (सूरतुल-जासियाः २१-२२).

जन्नत और जहन्नम और उनमें जो कुछ हिस्सी (ज़ाहेरी) और मानवी (बातिनी) नेमत और अज़ाब है उस पर ईमान रखना, मनुष्य के हक़ीक़त हाल (वस्तुस्थिति) के अनुसार है, इस हैसियत से कि वह शरीर और आत्मा से मिलकर बना है, और उनमें से हर एक की कुछ आशाएं और आवश्यकताएं हैं, और इस हैसियत से भी कि कुछ लोग ऐसे हैं जिनके लिए शरीर को छोड़कर केवल आत्मा की नेमत या अज़ाब पर्याप्त नहीं है, जिस प्रकार कि उनमें से कुछ लोग ऐसे

हैं जिन्हें आत्मा को छोड़कर केवल शरीर की नेमत या यातना सन्तुष्ट नहीं कर सकती है, इसीलिए जन्नत में खाना, पानी, बड़ी-बड़ी आंखों वाली हूरें (सुन्दरियाँ) और महानतम अल्लाह की प्रसन्नता है ... और जहन्नम में ज़ंजीरें, तौक़, थूहड़, खून-पीप, और कांटेदार पेड़ों का खाना होगा, जो न मोटा करेगा और न भूख मिटाएगा, और उनके लिए इसके उपरान्त अपमान, ज़िल्लत और रूसवाई होगी जो सबसे अधिक कठोर और कष्ट दायक होगी।

जीवन के तमाम पहलुओं में इस्लाम की सत्यता

इस्लाम के नियम, उसके सिद्धान्त और उसकी शिक्षाएं इंसान के जीवन के हर मैदान में लागू करने और अमल करने में सत्यता (हक़ीक़त पसन्दी) से प्रमुख और प्रधान है, और मनुष्य की परिस्थितियों, उसकी आवश्यकताओं और उसके विभिन्न हालतों का विचार करता है, इस सच्चाई से पर्दा उठाने के लिए हम इस सत्यता को केवल दो मैदानों के द्वारा स्पष्ट करेंगेः

प्रथम : इबादतों के अन्दर इस्लाम की सत्यता

इस्लाम कई वास्तविक एवं यथार्थिक इबादतों के साथ आया है, इसलिए कि वह इंसान के भीतर की आत्मा की अल्लाह तआला से सम्पर्क स्थापित करने की प्यास को जानता है, इसलिए उस पर ऐसी इबादतें फर्ज़ करार दिया है जो उसकी प्यास को बुझाती है, और उसकी तेज़ भूख को सेराब करती है, और उसके हृदय की खला (रिक्तता) को पूरी करती है, किन्तु उसने इंसान की सीमित शक्ति को ध्यान में रखा है, इसीलिए उसको

किसी ऐसी चीज़ का बाध्य नहीं किया है जो उसे कठिनाई और तंगी में डाल दे:

﴿ وَمَا جَعَلَ عَلَيْكُمْ فِي الدِّينِ مِنْ حَرَجٍ ﴾ [الحج: ٧٨].

और दीन के मामले में उसने तुम पर कोई तंगी नहीं डाली। (सूरतुल-हज्जः ७८)

(क) उदाहरणतः इस्लाम ने जीवन की वास्तविकता और हक़ीक़त, और उसके खानदानी, समाजी और आर्थिक परिस्थितियों, और जो कुछ वह इंसान पर रोज़ी की तलाश, और धरती के समतल, आसान रास्तों में भाग दौड़ को अनिवार्य कर देता है, को ध्यान में रखा है, इसलिए मुसलमान से इस बात का मुतालबा नही किया है कि वह गिरजाघरों में पादरियों के समान इबादत के लिए सारी चीज़ों से कट कर एकांत हो जाएं, बल्कि यदि वह ऐसा करना चाहे तब भी उसे इस एकांत की अनुमति नहीं दी है। मुसलमान को कुछ ऐसी इबादतों का बाध्य किया है जो उसे उसके रब (पालनहार) से जोड़ती हैं और उसे उसके समाज से काटती नहीं हैं, उन (इबादतों) से वह अपनी आख़िरत को बनाता (आबाद करता) है और उसके पीछे अपनी दुनिया को बर्बाद भी नहीं करता है, इस्लाम ने उनसे इस बात का

मुतालबा नहीं किया है कि वह अपने जीवन भर रूहानियत की खालिस फिज़ा में ऊंची उड़ान भरते रहें, बल्कि रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अपने कुछ साथियों से फरमायाः ''एक घण्टा और एक घण्टा''। (मुस्लिम)

(ख) इस्लाम को इंसान के अंदर उकताहट और उदासीनता की फित्रत का ज्ञान है, इसलिए उसने विभिन्न और नाना-प्रकार की इबादतों को अनिवार्य किया है, कुछ इबादतें शारीरिक (जिस्मानी) हैं जैसे नमाज़ और रोज़ा, और कुछ इबादतों का संबंध माल (धन व पूंजी) से है, जैसे कि ज़कात और सदक़ात व ख़ैरात, और तीसरी क़िस्म की इबादतें वह हैं जो दोनों को शामिल हैं जैसेकि हज्ज और उम्रा, तथा कुछ इबादतों को दैनिक कर दिया है जैसे नमाज़, और कुछ इबादतों को सालाना (वार्षिक) या मौसमी करार दिया है, जैसा रोज़ा और ज़कात, और कुछ को जीवन में केवल एक बार अनिवार्य किया है, जैसे हज्ज, फिर जो व्यक्ति अधिक भलाई और अल्लाह तआला की निकटता चाहता है उसके लिए द्वार खोल दिया है, और नफली (ऐच्छिक) इबादतें करना वैध कर दिया हैः

﴿ فَمَنْ تَطَوَّعَ خَيْراً فَهُوَ خَيْرٌ لَهُ ﴾[البقرة: ١٨٤]

जो व्यक्ति अपनी इच्छा से भलाई और नेकी करना चाहे तो वह उसके लिए श्रेष्ठ है।(सूरतुल-बक़रहः १८४)

(ग) इस्लाम ने मनुष्य के आपात काल की परिस्थितियों जैसे यात्रा और बीमारी आदि को ध्यान में रखा है, इसीलिए रूखसतों और आसानियों को वैध कर दिया है जिसे अल्लाह तआला पसन्द करता है, उदाहरण स्वरूप बीमार का अपने शक्ति अनुसार बैठकर या पहलु के बल नमाज़ पढ़ना, और जैसेकि ज़ख्मी (घायल) आदमी का यदि स्नान और वजू के लिए पानी का प्रयोग करना हानिकारक हो तो तयम्मुम करना, और बीमार का रमज़ान में रोज़ा न रखना, जबकि बाद में क़ज़ा करना वाजिब है, और गर्भवती (हामिला) और दूध पिलाने वाली महिला का यदि उन्हें अपनी या अपने बच्चों की जान का भय हो तो रोज़ा न रखना, इसी प्रकार अधिक आयु वाले बूढ़े व्यक्ति (वयोवृद्ध) और बूढ़ी स्त्री का रोज़ा न रखना और हर दिन के बदले फिद्या के रूप में एक मिस्कीन (निर्धन) को खाना खिलाना।

इसी प्रकार यात्री के लिए चार रिक्अत वाली नमाजों को क़स्र (कम) करना, और ज़ुह्र और अस्र की नमाज़ों को, या मग़्रिब और इशा की नमाज़ों को जमा करना (एक ही समय पर पढ़ना) चाहे जमा तक़्दीम की जाए (दोनों नमाज़ों को पहली नमाज़ के समय पर पढ़ी जाए) या जमा ताखीर (दोनों नमाज़ों का दूसरी नमाज़ के समय पर पढ़ी जाए), और यात्री के लिए रोजा न रखना जायज़ है ... यह सारी रूख्सतें (छूटें) लोगों के हक़ीक़ते हाल की रिआयत (विचार) करते हुए और उनके नित्य नयी और परिवर्तित होने वाली परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रदान की गई हैं, तथा अल्लाह की ओर से आसानी के तौर पर हैं, जैसाकि रोज़े की आयत में अल्लाह का फरमान है:

﴿ يُرِيدُ اللَّهُ بِكُمُ الْيُسْرَ وَلا يُرِيدُ بِكُمُ الْعُسْرَ ﴾

(البقرة: ١٨٥)

अल्लाह तआला का इरादा तुम्हारे साथ आसानी का है, सख्ती का नही। (सूरतुल-बक़रहः १८५)

द्वितीय : अख्लाक़ (व्यवहार) के अन्दर इस्लाम की सत्यता (हक़ीक़त पसन्दी) :

इस्लाम ने ऐसे वास्तविक (हक़ीक़त पसन्द) अख़्लाक़ व व्यवहार को पेश किया है, जिसने जन-साधारण की माध्यमिक शक्ति (क्षमता) को ध्यान में रखते हुए इंसानी कमज़ोरी, इंसानी जज़बात (दवाफे) और माद्दी (भौतिक) तथा मानसिक (नफ़्सियाती) आवश्यकताओं को स्वीकार किया है।

(क) उदाहरण के तौर पर इस्लाम ने इस्लाम में प्रवेश करने वाले पर यह अनिवार्य नहीं किया है कि वह अपने धन-पूंजी और रहन-सहन की चीज़ों को त्याग करदे, जैसाकि इन्जील मसीह के बारे में उल्लेख करता है कि उन्हों ने उपनी पैरवी करने के ईच्छुकों से कहाः

"अपने माल-धन को बेच दो, फिर मेरे पीछे चलो!"

और न ही क़ुरआन ने उस प्रकार की कोई बात कही है जिस प्रकार कि इन्जील का कहना है :

"धनी व्यक्ति आसमानों की बादशाहत में उस समय तक प्रवेष नहीं पासकता जबतक कि ऊंट सुई के नाके में प्रवेष न करले!"

बल्कि इस्लाम ने व्यक्ति और समाज की धन और माल की ज़रूरत को ध्यान में रखा है, चुनांचे उसे जीवन का स्थापित कर्ता समझा है, और उसको बढ़ाने और विकसित करने, और उसकी सुरक्षा करने का आदेश दिया है, और अल्लाह तआला ने क़ुरआन के अन्दर कई स्थानों पर मालदारी और धन की नेमत के द्वारा इंसान पर उपकार का उल्लेख किया है, अल्लाह तआला ने अपने रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से फरमायाः

﴿وَوَجَدَكَ عَائِلاً فَأَغْنَى﴾ (الضحى:٨)

और तुझे निर्धन पाकर धनी नहीं बनाया ? (सूरतुज़-जुहा :८)

और रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फरमाया :

((ما نفعني مال كمال أبي بكر))

अबु बक्र के धन की तरह किसी और धन ने मुझे लाभ नहीं पहुंचाया। (इस हदीस को इमाम अहमद ने अबु हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया है और उसकी सनद सहीह है जैसाकि मुनावी की किताब अल-यसीर में है)

और अम्र बिन आस रज़ियल्लाहु अन्हुमा से फरमायाः

((نعم المال الصالح للرجل الصالح))

नेक आदमी के लिए पाक और शुद्ध माल कितना बेहतरीन पूंजी है। (इस हदीस को इमाम अहमद ने अपनी मुसनद में और तब्रानी ने मोजमुल-कबीर में सहीह सनद के साथ रिवायत किया है)

(ख) कुरआन और सुन्नत में इस प्रकार की कोई बात नहीं आई है जिस प्रकार इन्जील में मसीह के कथन आए हैं :

"अपने दुश्मनों से प्रेम करो ... अपने को बुरा-भला कहने वालों के लिए बरकत की दुआ करो ... जो तुम्हारे दाहिने गाल पर मारे उसे बायाँ गाल भी पेश करदो ... और जो तुम्हारी क़मीस चुराले उसे अपना तहबंद भी देदो!"

यह चीज़ सीमित अवस्था में और किसी विशेष सूरतेहाल के उपचार के लिए वैध हो सकता है, किन्तु प्रत्येक स्थिति में, हर वतावरण में, हर ज़माने में, और सारे लोगों के लिए सामान्य निर्देश और सुझाव के रूप में उचित नहीं है, क्योंकि साधारण इंसान से अपने दुश्मन से मुहब्बत करने और उसे बुरा-भला कहने वाले को आशीर्वाद देने का मुतालबा करना उसके सहन और

बर्दाश्त से अधिक चीज़ है, इसीलिए इस्लाम ने मनुष्य से अपने दुश्मन के साथ न्याय से काम लेने का मुतालबा करने पर ही बस किया है :

﴿ وَلا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَآنُ قَوْمٍ عَلَى أَلَّا تَعْدِلُوا اعْدِلُوا هُوَ أَقْرَبُ لِلتَّقْوَى﴾ [المائدة:٨].

किसी क़ौम की दुश्मनी तुम्हें अन्याय करने पर न उभारे, न्याय किया करो जो तक़्वा (परहेज़गारी) के अधिक निकट है। (सूरतुल-माईदाः ८)

इसी प्रकार दाहिने गाल पर मारने वाले के लिए बायाँ गाल भी पेश करदेना ऐसा काम है जो लोगों के दिलों पर बहुत भारी और दूभर गुज़रता है, बल्कि बहुत से लोगों के लिए ऐसा करना दुश्वार और कठिन है, और होसकता है कि यह काम दुराचारी और बुरे लोगों को नेक और सदाचारी लोगों पर निडर और साहसी बना दे, और कभी कभार-कुछ हालतों में और कुछ लोगों के साथ- अनिवार्य होजाता है कि वह बुरे और बदमाश लोगों को उसी प्रकार दण्ड दें जिस प्रकार उन्हों ने अत्याचार किया है, और उन्हें क्षमा न किया जाए, ताकि ऐसा न हो कि वह प्रसन्नता का अनुभव करें और अधिक ज़ियादती और अत्याचार करने लगें।

(ग) इस्लामी अख्लाक़ (व्यवहार) की वास्तविकता में से यह भी है कि उसने लोगों के बीच फित्री (स्वभाविक) और अमली अन्तर और फर्क़ को स्वीकार किया है, क्योंकि सारे लोग ईमान की शक्ति, अल्लाह तआला के आदेशों का पालन करने, और उसकी निषेध की हुई बातों से बचने, और ऊंचे आदर्शों को अपनाने में एक ही श्रेणी और एक ही दर्जे के नहीं होते हैं।

चुनांचे एक श्रेणी इस्लाम की है, और दूसरी श्रेणी ईमान की है और तीसरी श्रेणी एहसान की है, और यह सर्वोच्च श्रेणी है, जैसा कि हदीसे जिब्रील में इसकी ओर संकेत है, और प्रत्यके श्रेणी के कुछ लोग हैं।

इसी प्रकार कुछ लोग (गुनाहों के द्वारा) अपने ऊपर अत्याचार करने वाले हैं, और कुछ लोग मध्य श्रेणी के हैं (मिले जुले -अच्छा और बुरा दोनों- अमल करने वाले हैं) और कुछ लोग नेकियों और भलाईयों में जल्दी करने वाले (पेश-पेश रहने वाले) हैं, जैसाकि अल्लाह तआला ने क़ुरआन करीम में बयान किया है।

५- इस अर्थ की पूर्ति इससे भी होती है कि इस्लामी अख्लाक़ ने मुत्तक़ियों के बारे में यह अनिवार्य नहीं किया है कि वह हर बुराई से पवित्र हों, और हर गुनाह

से मासूम हों, मानो कि वह परों वाले फरिश्ते हैं, बल्कि उसने इस बात को ध्यान में रखा है कि मनुष्य मिट्टी और रूह (आत्मा) से मिलकर बना है, यदि आत्मा उसे कभी ऊंचा उठाती है, तो मिट्टी उसे कभी नीचे गिरा देती है, और मुत्तक़ियों (परहेज़गारों, आत्मसंयमों) की विशेषता यह है कि वह क्षमा याचना करने वाले (माफी मांगने) और अल्लाह की ओर लौटने वाले होते हैं, जैसाकि अल्लाह तआला ने अपने इस फरमान में उनकी विशेषता का उल्लेख किया है :

﴿وَالَّذِينَ إِذَا فَعَلُوا فَاحِشَةً أَوْ ظَلَمُوا أَنْفُسَهُمْ ذَكَرُوا اللَّهَ فَاسْتَغْفَرُوا لِذُنُوبِهِمْ وَمَنْ يَغْفِرُ الذُّنُوبَ إِلَّا اللَّهُ وَلَمْ يُصِرُّوا عَلَى مَا فَعَلُوا وَهُمْ يَعْلَمُونَ﴾

(آل عمران:١٣٥)

जब उनसे कोई बेहूदा (अश्लील) काम होजाए या कोई गुनाह कर बैठें तो तुरन्त अल्लाह का ज़िक्र और अपने गुनाहों के लिए क्षमा मांगते हैं, वास्तव में अल्लाह के अतिरिक्त कौन गुनाहों को क्षमा कर सकता है? और वह ज्ञान के होते हुए किसी बुरे काम पर हठ नहीं करते हैं। (सूरत आल-इम्रानः १३५).

इस्लाम में क़ानून साज़ी के स्रोत

जब मनुष्य के पास क़ानून साज़ी और आदेश व निषेध का स्रोत उसका पालनहार और जन्मदाता होता है, वह क़वानीन और संविधान नहीं होते हैं जिसे मनुष्य बनाता है ; तो उसकी अनेक विशेषताएं और महान फायदे होते हैं, इसका कारण स्पष्ट है और वह हैः इस क़ानून (संविधान) के बनाने वाले का कमाल और सम्पूर्णता और वह अल्लाह सुब्हानहु व तआला है, परन्तु जो अन्य क़वानीन और संविधान हैं उनके साथ मनुष्य की कमज़ोरी, कोताही और अभाव लगी रहती है।

इस्लामी क़वानीन (नियमों) के फायदे को निम्न प्रकार से उल्लेख किया जासकता हैः

1– तनाकुज़ और उग्रवाद से सुरक्षा :

क़ानून (शरीअत) का स्रोत मनुष्य के पालनहार और सृष्टा के होने का सर्वप्रथम प्रभाव और विशेषता यह है कि वह उस तनाकुज़ और मतभेद से सुरक्षित होता है जिससे इन्सानी क़वानीन व संविधान और परिवर्तित धर्म पीड़ित होते हैं।

मनुष्य -अपनी प्रकृति ही से- आपस में एक युग के लोग दूसरे युग के लोगों से विरोध (तनाक़ुज़) और भेद-भाव रखते हैं, बल्कि एक ही युग में एक समय के लोग दूसरे समय के लोगों से, एक देश (क्षेत्र) के लोग दूसरे देश (क्षेत्र) से, बल्कि एक ही देश में एक प्रदेश (मंडल) के लोग दूसरे प्रदेश (मंडल) से, और एक ही प्रदेश में एक वातावरण के लोग दूसरे वातावरण के लोगों के विरूध होते हैं।

हम प्रायः देखते हैं कि जवानी की अवस्था में एक व्यक्ति की सोच-विचार, अधेड़पन या बुढ़ापे की अवस्था में उसकी सोच-विचार के विरूध होता है, और प्रायः हम देखते हैं कि कठिनाई और निर्धनता की घड़ी में उसके विचार, खुशहाली और मालदारी की अवस्था में उसके विचार से विभिन्न होते हैं।

जब मनुष्य की बुद्धि की यह फित्रत है, और आवश्यक रूप से वह समय, स्थान, परिस्थितियों और दशाओं से प्रभावित होता है, तो फिर वह जीवन के जो क़वानीन बनाता है उसमें तनाक़ुज़ और मतभेद से सुरक्षित होने की कल्पना कैसे की जा सकती है ?! चाहे वह क़वानीन कल्पना और विश्वास से संबंधित हों, यह व्यवहार और अमल करने के लिए हों, ... निःसन्देह

तनाकुज़ और अन्तर उसका एक आवश्यक अंश (भाग) है।

इस तनाकुज़ (भिन्नता, मतभेद) की झलकियों में से यह भी है कि हम प्रत्येक खुदसाख्ता (गढ़े हुए) और परिवर्तित धार्मिक और इन्सानी क़वानीन और व्यवस्थाओं में इफ्रात और तफ्रीत (अभाव और अतिशयोक्ति) को देखते और अनुभव करते हैं, जैसाकि यह हक़ीक़त रूहानी (आत्मिक) और माद्दी (भौतिक), या व्यक्तिगत और सामूहिक, या वास्तविकता और आदर्शता, या अक़्ल और दिल, या दृढ़ता और परिवर्तन, और इनके अतिरिक्त अन्य विपरीत चीजों के बारे में उनके दृष्टिकोण से स्पष्ट है, जिसके बारे में प्रत्येक धर्म या क़ानून केवल एक ही पहलु पर दृष्टि रखता है, दूसरे पहलु से बेपरवाई करता है, या उस पर अत्याचार (ज़ियादती) करता है, किन्तु इस्लामी क़ानून (शास्त्र) इसके विपरीत है जिसका स्रोत मनुष्य का जन्मदाता -उत्पत्तिकर्ता- है मनुष्य नहीं है !

2– जानिबदारी (पक्षपात) और स्वेच्छा से पाक होना :

इस्लाम के अन्दर इस रब्बानियत (अर्थात रब्ब-अल्लाह की ओर से होने) के फायदे में से यह भी है किः वह नितांत न्याय पर आधारित है, और जानिबदारी (पक्षपात), अत्याचार और ख्वाहिशात की पैरवी से पवित्र है, जिससे कोई भी मनुष्य सुरक्षित नहीं रह सकता, चाहे वह कोई भी हो।

हां , कोई भी ग़ैर मासूम व्यक्ति -ज्ञान और आत्मसयंम के अन्दर उसका स्तर कितना ही ऊंचा क्यों न हो- वह ख्वाहिशात, और व्यक्तिगत, खानदानी, क्षेत्रीय, दलीय और राष्ट्रीय रूजहानात और मैलान से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, अगरचे वह अपने ज़ाहिरी मामले में न्याय प्रिय हो, और अपक्षता (ग़ैरजानिबदारी) का बहुत इच्छुक हो।

यदि इस मनुष्य की कोई निर्धारित स्वेच्छा, या विशेष रूजहानात (विचारधाराएं) हों, जो उसकी सहनुमाई करते हों और उसके सोच-विचार को परिवर्तति करते हों, और उसके फैसिले को उसी ओर मोड़ने वाले हों जिसका वह इच्छुक और प्रेमी है, तो यह गम्भीर मुसीबत (समस्या) है। इसके अन्दर इन्सान की ज़ाती कोताही व अभाव के

साथ, पैरवी की जाने वाली ख्वाहिश भी एकत्र होगई, इस प्रकार समस्या और गम्भीर होगईः

﴿ وَمَنْ أَضَلُّ مِمَّنِ اتَّبَعَ هَوَاهُ بِغَيْرِ هُدىً مِنَ اللَّهِ ﴾

[القصص: ٥٠].

उस व्यक्ति से बढ़कर पथ-भ्रष्ट कौन होगा जो अल्लाह तआला के मार्ग दर्शन के बिना अपने ख्वाहिशात के पीछे चलने वाला हो।

(सूरतुल-क़िसस्ः ५०)

किन्तु जहाँ तक ''अल्लाह तआला की व्यवस्था'' और ''अल्लाह तआला के क़ानून'' का प्रश्न है तो स्पष्ट है कि उसे लोगों के पालनहार ने लोगों के लिए बनाया है, उस ज़ात ने उसे बनाया हे जो ज़मान व मकान (समय और स्थान) से प्रभावित नहीं होती है, इसलिए की वही ज़मान व मकान का पैदा करने वाला है, और जिस पर ख्वाहिशात और रूजहानात का बस नहीं चलता है क्योंकि वह ख्वाहिशात और रूजहानात से पवित्र है, और वह ज़ात किसी राष्ट्र (नस्ल), रंग और दल का पक्ष नहीं करती है, इसलिए कि वह सब की पालनहार है, और सबलोग उसके ग़ुलाम हैं, इसलिए उसके बारे में

एक दल को छोड़कर दूसरे दल की, एक नस्ल को छोड़कर दूसरे नस्ल की और एक राष्ट्र को छोड़कर दूसरे राष्ट्र का पक्ष और जानिबदारी करने की कल्पना नही की जा सकती।

३- सम्मान और पैरवी करने में सरलताः

इसी प्रकार इस रब्बानियत के प्रतिफल और फायदे में से यह भी है कि यह रब्बानी (ईश्वरीय) व्यवस्था या क़ानून को पवित्रता और सम्मान से सुसज्जित करता है, जो मनुष्य के बनाये हुए किसी व्यवस्था और क़ानून में नहीं पाया जाता है।

यह सम्मान और पवित्रता यहां से जन्म लेता है कि मोमिन अल्लाह तआला के कमाल (पूर्णता) और उसके अपनी तख़्लीक़ (उत्पत्ति) और आदेश में हर प्रकार की कमी से पाक होने का एतिक़ाद रखता है, और यह कि अल्लाह तआला ने हर चीज़ को बेहतरीन रूप में पैदा किया है और हर चीज़ की कारीगरी को सुदृढ़ किया है, जैसा कि अल्लाह तआला ने अपनी किताब में फरमाया है:

﴿ صُنْعَ اللَّهِ الَّذِي أَتْقَنَ كُلَّ شَيْءٍ ﴾ [النمل:٨٨]

यह अल्लाह तआला की कारीगरी है जिसने हर चीज़ को सुदृढ़ बनाया है। (सूरतुन्-नम्लः ८८)

इसी प्रकार अल्लाह तआला ने हर उस चीज़ को मोहकम (सुदृढ़) बनाया जिसे उसने शरीयत (क़ानून) क़रार दिया है, और हर उस किताब को मोहकम बनाया है जिसे उसने उतारा है, जैसाकि अल्लाह तआला ने क़ुरआन करीम के बारे में फरमाया है:

﴿ كِتَابٌ أُحْكِمَتْ آيَاتُهُ ثُمَّ فُصِّلَتْ مِنْ لَدُنْ حَكِيمٍ خَبِيرٍ ﴾ [هود:١].

यह एक ऐसी किताब है कि उसकी आयतें सदृढ़ की गई हैं, फिर स्पष्ट रूप से उनकी व्याख्या की गई है, एक हकीम (तत्वदर्शी) सर्वज्ञानी की ओर से। (सूरत-हूदः १)

सो उसने जो कुछ पैदा किया और मुक़द्दर किया है उसमें हिक्मत वाला है, और जो कुछ उसने आदेश दिया है और मनाही की है उसमें वह हिक्मत वाला है: (अल्लाह तआला का फरमान है):

﴿ مَا تَرَى فِي خَلْقِ الرَّحْمَنِ مِنْ تَفَاوُتٍ ﴾ [الملک: ٣].

तुम्हें रहमान -अल्लाह- की उत्पत्ति में कोई गड़बड़ी (अभाव) नहीं दिखाई देगी। (सूरतुल-मुल्कः ३)

तुम्हें रहमान की शरीअत (क़ानून) में कोई अभाव (क्षय) और बेजोड़ नही मिलेगा, सो बहुत पवित्र है अल्लाह तआला जो सर्वश्रेष्ठ पैदा करने वाला, और तमाम हाकिमों का हाकिम (शासक) है।

इस सम्मान और तक़्दीस के अधीन यह है कि मनुष्य इस व्यवस्था की शिक्षाओं और उसके आदेशों से प्रसन्न हो, और खुले दिल से, बुद्धि की सन्तुष्टि और संतोष हृदय के साथ उचित रूप से स्वीकार करे, यह अल्लाह और उसके रसूल पर विश्वास रखने के कारणों में से है:

﴿فَلا وَرَبِّكَ لا يُؤْمِنُونَ حَتَّى يُحَكِّمُوكَ فِيمَا شَجَرَ بَيْنَهُمْ ثُمَّ لا يَجِدُوا فِي أَنْفُسِهِمْ حَرَجاً مِمَّا قَضَيْتَ وَيُسَلِّمُوا تَسْلِيماً﴾ [النساء:٦٥].

सो सौगन्ध है तेरे पालनहार की ! यह मोमिन नहीं होसकते, जबतक कि तमाम आपस के मतभेद में आप को हाकिम न मान लें, फिर जो निर्णय आप उनमें करदें उनसे अपने दिल में किसी प्रकार की

तंगी और अप्रसन्नता न अनुभव करें, और आज्ञाकारिता के साथ स्वीकार करलें।

(सूरतुन-निसाः ६५)

और इस सम्मान, तक़्दीस और सुस्वीकारता से यह आवश्यक होजाता है कि उसे अमल में लाने में शीघ्रता की जाए, और खुशी और दुख में उसपर कान धरा जाए और आज्ञापालन की जाए, किसी प्रकार का टालमटोल, या काहिली न की जाए, और न ही व्यवस्था के अनुसार चलने और उसकी पाबन्दी करने, और आदेशों और निषेध बातों का अनुपालन करने से जान छुड़ाने के लिए बहाना बाज़ी किए बिना।

हम यहाँ पर केवल दो उदाहरणों का उल्लेख करने पर बस करते हैं जो नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के समयकाल में अल्लाह तआला की शरीअत और उसके आदेश और निषेध के प्रति मुसलमान पुरूषों और स्त्रियों के मौक़िफ और रवैये को स्पष्ट करते हैं:

प्रथम: शराब के हराम किए जाने के पश्चात मदीना में मोमिनों की ओर से जो मौक़िफ सामने आया:

अरब को शराब (मदिरा) पीने और उसके बर्तनों और उसकी बैठकों का बहुत शौक़ था, अल्लाह तआलाा को भली-भांति इसका ज्ञान था, इसलिए अल्लाह तआला ने उसे हराम करने में तद्रीज (क्रमशः, धीरे-धीरे) का रास्ता चुना, यहां तक कि वह निर्णायक आयत उतरी जिसने उसे निश्चित रूप से हराम क़रार दिया। और यह घोषणा की किः

﴿ رِجْسٌ مِنْ عَمَلِ الشَّيْطَانِ ﴾ [المائدة: ٩٠].

यह सब अपवित्र , शैतान के कामों में से हैं।

(सूरतुल-माईदाः ९०)

और इस आयत के आधार पर नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उसका पीना, बेचना और उसे ग़ैर मुस्लिमों को उपहार देना हराम क़रार दिया, फिर क्या था कि मुसलमानों ने उनके पास जो भी शराब के भण्डार और उसके बर्तन थे उसे लाकर मदीना की गलियों में उंडेल दिया, यह इस बात की घोषणा थी कि वह उससे पाक और पवित्र होगऐ।

अल्लाह तआला की इस शरीअत की पैरवी का एक अनोखा पहलू यह है कि उनमें से एक दल को जब यह आयत पहुंची तो उनमें एक ऐसा व्यक्ति भी था जिसके

हाथ में शराब का पियाला थाः जिसमें से उसने कुछ पी लिया था और कुछ उसके हाथ में बाक़ी था, तो उसने उसे अपने मुंह से फेंक दिया और -अल्लाह तआला के फरमान : ﴿ فَهَلْ أَنْتُمْ مُنْتَهُونَ﴾ अर्थातः सो अब भी तुम बाज़ आजाओ। (सूरतुल-माईदाः९०) का पालन करते हुए- कहाः ऐ हमारे पालनहार ! हम बाज़ आगए।

यदि हम इस्लामी वातावरण में शराब के विरूध जंग करने और उसका काम समाप्त करने में इस स्पष्ट सफलता की तुलना उस भयानक पराजय से करें जिससे संयुक्त राज्य ऑफ अमेरिका उस समय दोचार हुआ जिस दिन उसने क़वानीन और फौजी दस्तों (अर्थात शक्ति) के द्वारा शराब के विरूध युध करने का इरादा किया- तो हमें ज्ञात होजाएगा कि मानव-जाति का सुधार केवल आसमान का क़ानून और संविधान ही कर सकता हैः जिसकी विशेषता यह है कि वह शक्ति और शासन पर भरोसा करने से पहले आत्मा और विश्वास पर भरोसा करता है।

दूसरा उदाहरण : प्राथमिक मुसल्मान महिलाओं का वह मौक़िफ है जो उन्होंने अल्लाह तआला के उस आदेश के प्रति अपनाया जो अल्लाह तआला ने उन पर जाहिलियत

काल (इस्लाम से पूर्व अरब जिस अज्ञानता और पथभ्रष्टा में जी रहे थे उसे जाहिलयत का काल कहते हैं) के समान बिना पर्दा के घूमना वर्जित (हराम) कर दिया और उन पर पर्दा करना और सतीत्व (हया) के साथ रहना अनिवार्य कर दिया, चुनांचे जाहिलियत के समय काल में स्त्री अपने सीने को खोल कर चलती थी, उसे कोई चीज़ छुपाए और ढके हुए नहीं होती थी, और प्रायः अपने गर्दन, बाल और कानों की बालियों को दिखाती रहती थी, तो अल्लाह तआला ने मोमिन महिलाओं पर पहली जाहिलियत के समान बेपर्दा घूमना हराम क़रार दियाा और उन्हें आदेश दिया कि वह जाहिलियत की स्त्रियों से विभिन्न रहें और उनके शिआर (चाल-ढाल) का विरोध करें, और अपने चाल-चलन, रहन-सहन और तमाम अहवाल में पर्दे और सभ्यता का विशेष ध्यान रखें, इस प्रकार कि वह अपने गर्दनों पर दुपट्टे डाल लिया करें, अर्थात अपने सिर के दुपट्टे को इस तरह कसकर बांध लिया करें कि वह सीने के खुले हूए भाग को ढांक ले, इस प्रकार सीना, गर्दन और कान छुप जाएगा।

यहाँ पर उम्मुल-मोमिनीन सैयिदह आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा हमें बयान करती हैं कि किस प्रकार प्रथम इस्लामी

समाज में मुहाजिरीन और अन्सार की स्त्रियों ने इस इलाही (ईश्वरीय) क़ानून का सवागत किया, जो महिलाओं के जीवन में एक महत्वपूर्ण चीज़ के परिवर्तन से संबंधित था, और वह है चाल-ढाल (वेशभूषा), बनाव-सिंगार और वस्त्र (पोशाक)।

आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा फरमाती हैं: "**प्रथम मुहाजिरीन की महिलाओं पर अल्लाह तआला रह्मत (कृपा) बरसाए .... जब अल्लाह तआला ने यह आयत उतारी** :

﴿ وَلْيَضْرِبْنَ بِخُمُرِهِنَّ عَلَى جُيُوبِهِنَّ ﴾ [النور:٣١].

और अपने गरीबान पर अपनी ओढ़नियां डाल लिया करें। (सूरतुन्-नूरः ३१)

तो उन्होंने अपनी चादरों को फाड़कर उसे ओढ़नियां बनालीं। (बुख़ारी)

यह है मोमिन महिलाओं का मौक़िफ उस चीज़ के बारे में जिसे अल्लाह तआला ने उनके लिए मश्रूअ (वैध) किया है, कि वह जिस चीज़ का अल्लाह तआला ने आदेश दिया है उसका पालन करने, और जिस चीज़ से रोका है उससे बचने में शीघ्रता (पहल) करती हैं, न

कोई संकोच (तवक़्कुफ) न प्रतीक्षा, उन्होंने एक दिन या दो दिन या उससे अधिक प्रतीक्षा नहीं किया ताकि वह नए कपड़े खरीद या सिल सकें जो उनके सिर को ढांपने के योग्य हो, और गरीबान पर डालने की क्षमता रखता हो, बल्कि जो भी कपड़ा मिल गया, और जो भी रंग मिल गया वही उनके लिए योग्य और मुनासिब है, और यदि नहीं मिला तो अपने कपड़ों और चादरों को फाड़ लिया और उसे अपने सिर पर बांध लिया, इस बात की परवाह नहीं कि उसके कारण उनका दृश्य कैसे लगेगा, ऐसा लगता था जैसेकि उनके सरों पर कव्वे बैठे हों।

4— मनुष्य की, मनुष्य की पूजा और गुलामी से आज़ादी :

उपरोक्त सभी विशेषताओं से बढ़कर - इस रब्बानियत के परिणामों और फायदों में से यह है कि मनुष्य, मनुष्य की पूजा और गुलामी (दासता) से आज़ाद होजाता है। इसलिए की पूजा के अनेक प्रकार और रूप हैं, और उनमें से सर्वाधिक खतरनाक, और सबसे अधिक प्रभावपूर्ण यह है कि मनुष्य अपने ही समान दूसरे मनुष्य के समर्पित होजाए! कि वह उसके लिए जो चाहे जब चाहे हलाल करदे, और उस पर जो चाहे और

जिस तरह चाहे हराम ठहरादे, और उसे जिस चीज़ का चाहे आदेश दे और वह आदेश का पालन करे, और जिस चीज़ से चाहे उसे मनाही करदे और वह उससे बाज़ आजाए, दूसरे शब्दों में वह उसके लिए एक ''**जीवन व्यवस्था**'' या ''**जीवन मार्ग**'' निर्धारित करदे और उसके लिए उसे स्वीकार करने, उसे मानने और उसकी पैरवी करने के अतिरिक्त कोई विकल्प न हो।

सत्य बात यह है कि जो हस्ती इस व्यवस्था या मार्ग को निर्धारित करने, लोगों को उसका बाध्य करने और उन्हें उसके अधीन करने का अधिकार रखती है वह अकेले अल्लाह की ज़ात है, जो लोगों का पालनहार, लोगों का स्वामी और लोगों का इलाह (उपास्य) है, इसलिए केवल उसी का यह अधिकार है कि वह लोगों को आदेश दे और उन्हें रोके (मना करे), और उनके लिए किसी चीज़ को हलाल करे और उनपर किसी चीज़ को हराम करे, इसलिए कि यह उसकी रूबूबियत (खालिक़, मालिक और पालनहार होने), उन्हें पैदा करने, और उन्हें हर प्रकार और अस्नाफ व अक़्साम की नेमतों से सम्मानित करने का तकाज़ा है:

﴿وَمَا بِكُمْ مِنْ نِعْمَةٍ فَمِنَ اللَّهِ﴾ [النحل:٥٣].

तुम्हारे पास जितनी भी नेमतें हैं सब उसी -अल्लाह- की दी हुई हैं। (सूरतु-नह्लः ५३)

यदि कुछ लोग अपने लिए इस अधिकार का दावा करें- या उनके लिए इसका दावा किया जाए- तो वह लोग अल्लाह तआला से उसकी रूबूबियत के अधिकार में झगड़ रहे हैं, और उसकी उलूहियत के शासन में हस्तक्षेप कऱ रहे हैं, और उन्हों ने अल्लाह के कुछ बन्दों को अपना बन्दा और गुलाम बना लिया है, हालांकि वह भी उन्हीं के समान मख्लूक़ (पैदा किए गए) हैं, उन पर भी अल्लाह की सुन्नतों (क़वानीन) में से वही चीज़ें जारी होती हैं जो अन्य लोगों पर जारी होती हैं।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कुरआन करीम ने यहूद व नसारा के इस व्यवहार को नकारा है कि वह अपनी उस आज़ादी को प्रत्याग कर बैठे जिस पर उनकी पैदाईश हुई थी, और अपने उन विद्वानों और दरवीशों की पूजा और गुलामी पर सहमत होगए, जो उनके लिए आदेश और निषेध, हलाल और हराम के क़ानून बनाने के अधिकार के मालिक बन बैठे, और किसी भी व्यक्ति को आपत्ति व्यक्त करने या टिप्पणी करने या नज़र सानी (पुनः विचार) करने का कोई अधिकार नहीं होता था, इसीलिए कुरआन करीम ने

अहले किताब (यहूद व नसारा) पर शिर्क और ग़ैरूल्लाह की इबादत करने का ठप्पा लगा दिया है।

इसी बारे में कुरआन करीम का फरमान है:

﴿اتَّخَذُوا أَحْبَارَهُمْ وَ رُهْبَانَهُمْ أَرْبَاباً مِنْ دُونِ اللَّهِ وَالْمَسِيحَ ابْنَ مَرْيَمَ وَمَا أُمِرُوا إِلَّا لِيَعْبُدُوا إِلَهاً وَاحِداً لا إِلَهَ إِلَّا هُوَ سُبْحَانَهُ عَمَّا يُشْرِكُونَ﴾

[التوبة:٣١]

उन्होंने अल्लाह को छोड़कर अपने विद्वानों और दरवीशों को रब्ब (उपासना पात्र) बनाया है , और मरियम के बेटे मसीह को भी, हालांकि उन्हे केवल एक अकेले अल्लाह की उपासना का आदेश दिया गया था, जिसके सिवा कोई पूजा पात्र नहीं, वह -अल्लाह तआला- उनके साझी बनाने से पाक और पवित्र है। (सूरतुत्-तौबः ३१)

इस्लाम क्या है ?

सम्पूर्ण इस्लाम जिसके साथ अल्लाह तआला ने अपने संदेश्वाहक मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को भेजा है वह पांच स्तम्भों पर आधारित है, कोई मनुष्य उस समय तक पक्का और सच्चा मुसलमान नहीं हो सकता जब तक कि वह उन पर ईमान न ले आए (विश्वास न रखे) उनकी अदायगी न करे और उन पर कार्य बद्ध न हो, वह निम्नलिखित हैं :

१. **इस बात की गवाही (साक्ष्य) दे कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई अन्य पूज्य नहीं है और यह कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अल्लाह के संदेश्वाहक हैं।**

२. नमाज़ क़ाईम करे।

३. ज़कात (अनिवार्य धर्म-दान) दे।

४. रमज़ान के महीने का रोज़ा रखे।

५. अल्लाह के पवित्र घर (काबा) का हज्ज करे यदि वहां तक पहुंचने का सामर्थ्य रखता हो।

इन पांचों स्तम्भों में से प्रत्येक स्तम्भ की आगे सन्छिप्त व्याख्या की जा रही है :

प्रथम स्तम्भः **'ला इलाहा इल्लल्लाह'** (अल्लाह तआला के अतिरिक्त कोई सच्चा पूज्य नहीं) और **'मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह'** (मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अल्लाह के संदेश्वाहक हैं) की गवाहीः

यह गवाही मनुष्य के इस्लाम में प्रवेष करने का द्वार और कुन्जी है, वह किसी अन्य गवाही या किसी अन्य कहे जाने वाले शब्द के समान नहीं है, कदापि नहीं, बल्कि इस धर्म के अन्दर उसका एक महान और गहरा अर्थ है, यही कारण है कि जो व्यक्ति उसे अपने मुख से कह ले और उसके अर्थ को भली-भांति जानता पहचानता हो, तो उसका प्रतिफल यह है कि क़ियामत के दिन अल्लाह तआला उसे स्वर्ग में दाखिल करेगा। इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम इस विषय में फरमाते हैं :

((من شهد أن لا إله إلا الله وحده لا شريك له، وأن محمدا عبده ورسوله، وأن عيسى عبد الله ورسوله، وكلمته ألقاها إلى مريم وروح منه، والجنة حق، والنار حق، أدخله الجنة على ما كان من العمل))

رواه البخاري ومسلم.

जिसने इस बात की गवाही दी कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई अन्य पूजनीय नहीं, वह अकेला है उसका कोई साझी नहीं, और यह गवाही दे कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अल्लाह के बन्दे और उसके संदेश्वाहक हैं, और ईसा अल्लाह के बन्दे (भक्त) और उसके संदेश्वाहक, तथा उसके कलिमा हैं जिसे मरियम की ओर अल्लाह तआला ने डाल दिया था और उसकी ओर से रूह हैं, और यह कि जन्नत सत्य है और नरक सत्य है, तो ऐसे व्यक्ति को अल्लाह तआला स्वर्ग में प्रवेष दिलाएगा चाहे उसका कर्म कुछ भी हो। (बुखारी व मुस्लिम)

'**ला इलाहा इल्लल्लाह**' की गवाही का अर्थ यह है कि आकाश और धरती में अकेले अल्लाह के अतिरिक्त कोई

अन्य वास्तविक पूज्य नहीं, वही सच्चा पूज्य है, और अल्लाह के अतिरिक्त जिसकी भी मनुष्य पूजा करते हैं चाहे उसकी गुणवत्ता कुछ भी हो; वह झूठा और असत्य है।

'मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' (मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के अल्लाह के संदेश्वाहक होने) की गवाही देने का अर्थ यह है कि आप यह ज्ञान और विश्वास (आस्था) रखें कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम संदेश्वाहक हैं जिन्हें अल्लाह तआला ने समस्त मानव और जिन्नात की ओर संदेश्वाहक बनाकर भेजा है, और यह कि वह एक उपासक हैं उपासना के पात्र नहीं हैं (अर्थात उनकी उपासना नहीं की जाएगी) और वह एक संदेश्वाहक हैं उन्हें झुठलाया नहीं जाएगा, बल्कि उनका आज्ञापालन और अनुसरण किया जाएगा, जिसने उनका आज्ञापालन किया वह स्वर्ग में प्रवेष करेगा, और जिसने उनकी अवहेलना की वह नरक में जाएगा, पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं :

((ما من رجل يهودي أو نصراني يسمع بي ، ثم لا يؤمن بالذي جئت به إلا دخل النار))

जो भी यहूदी या ईसाई मेरे बारे में सुने, फिर मेरी लाई हुई शरीअत पर ईमान न लाए, वह नरक में प्रवेष करेगा।

इसी प्रकार आप यह भी ज्ञान और विश्वास रखें कि शरीअत के क़ानून और आदेश तथा निषेध को, चाहे उसका संबंध इबादतों से हो, शासन व्यवस्था से हो, या हलाल और हराम से हो, या आर्थिक, या समाजिक या व्यवहारिक जीवन से हो या इनके अतिरिक्त किसी अन्य मैदान से हो, केवल इस रसूले करीम मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के मार्ग से ही लिया जा सकता है; इसलिए कि अल्लाह के सरूल मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ही अपने रब्ब (पालनहार) की ओर से उसकी शरीअत के प्रसारक व प्रचारक हैं, अतः किसी मुसल्मान के लिए वैध (जायज़) नहीं है कि वह पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के रास्ते के अतिरिक्त किसी अन्य रास्ते से आए हुए किसी क़ानून या आदेश या मनाही को स्वीकार करे।

द्वितीय स्तम्भः नमाज़

इस नमाज़ को अल्लाह तआला ने इसलिए मश्रूअ किया है ताकि वह अल्लाह तआला और बन्दे के मध्य संबंध का माध्यम बन जाए जिसमें वह उसकी आराधना करे और उसे पुकारे, नमाज धर्म का खम्बा और उसका मूल स्तम्भ है, जिस प्रकार कि तम्बू का खम्बा होता है यदि वह गिर जाए तो अवशेष स्तम्भों का कोई मूल्य नहीं रह जाता, इसी के बारे में क़ियामत के दिन मनुष्य से सर्वप्रथम पूछ-ताछ किया जाएगा (हिसाब लिया जाएगा), यदि यह (नमाज़) स्वीकार कर ली गई तो उसके सारे कर्म स्वीकार कर लिए जाएंगे, और यदि इसे ठुकरा दिया गया तो उसके सारे कर्म ठुकरा दिए जाएंगे।

अल्लाह तआला ने इस नमाज़ के लिए कुछ शर्तें निर्धारित की हैं, तथा इसके कुछ अर्कान और वाजिबात भी हैं, जिन्हें उनके लक्षित विधि पर करना प्रत्येक नमाज़ी के लिए आवश्यक है ताकि अल्लाह के पास वह नमाज़ स्वीकार हो।

नमाज़ और उसकी रिकअतों की संख्याः

इन नमाज़ों की संख्या दिन और रात में पांच बार है, और वह नमाज़ें यह हैं, फज्र की नमाज़ दो रिक्अत,

जुह्र की नमाज़ चार रिक्अत, अस्र की नमाज़ चार रिक्अत, मग्रिब की नमाज़ तीन रिक्अत, और इशा की नमाज़ चार रिक्अत। तथा इनमें से प्रत्येक नमाज़ का एक निर्धारित समय है जिससे उसको विलम्ब करना जायज़ नहीं है, जिस प्रकार कि उसे उसके समय से पहले पढ़ना जायज़ नहीं, और यह नमाज़ें मस्जिदों में पढ़ी जाएंगी जो अल्लाह के घर हैं, इससे केवल उस व्यक्ति को छूट है जिसके पास कोई शरई कारण हो जैसेकि यात्रा और बीमारी आदि।

नमाज़ के फायदे और विशेषताएं :

इन नमाजों को पाबंदी के साथ पढ़ने के बहुत से लौकिक और प्रलौकि लाभ और विशेषताएं हैं, जिनमें से कुछ यह हैं :

①- यह नमाज़ मनुष्य के लिए संसार की बुराईयों और कठिनाईयों से सुरक्षित रहने का कारण है, इसके बारे में नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं :

(من صلى الصبح في جماعة فهو في ذمة الله ، فانظر يا ابن آدم لا يطلبنك الله من ذمته بشيء)

رواه مسلم.

जिसने सुबह (फज्र) की नमाज़ जमाअत के साथ पढ़ी वह अल्लाह तआला की सुरक्षा में है, सो ऐ आदम के बेटे, देख कहीं अल्लाह तआला तुझसे अपनी सुरक्षा में से किसी चीज़ का मुतालबा न करने लगे। (मुस्लिम).

②- नमाज़ गुनाहों के क्षमा का कारण है जिनसे कोई व्यक्ति सुरक्षित नहीं रह पाता है, इसके बारे में नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

((من تطهر في بيته، ثم مضى إلى بيت من بيوت الله ليقضي فريضة من فرائض الله ، كانت خطواته إحداها تحط خطيئة ، والأخرى ترفع درجة)) رواه مسلم

जो व्यक्ति अपने घर में वुज़ू करता है, फिर अल्लाह के घरों में से किसी घर (मस्जिद) में अल्लाह तआला की अनिवार्य की हुई किसी फर्ज़ नमाज़ को पढ़ने के लिए जाता है, तो उसके एक पग पर एक गुनाह झड़ता है और दूसरे पग पर एक पद बलन्द होता है। (मुसिलम)

③-यह नमाज़ पढ़ने वालों के लिए फरिश्तों की दुआ (आशीर्वाद) और उनकी क्षमा याचना करने का कारण है , इसके विषय में नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

((الملائكة تصلي علي أحدكم مادام في مصلاه الذي صلى فيه ما لم يحدث، تقول : اللهم اغفر له، اللهم ارحمه)) رواه البخاري.

फरिश्ते तुम्हारे लिए रहमत की दुआ करते रहते हैं जब तक तुम में से कोई व्यक्ति अपने उस स्थान पर होता है जिसमें उसने नमाज़ पढ़ी है, जब तक कि उसका वुज़ू टूट न जाए, फरिश्ते दुआ करते हैं: ऐ अल्लाह! उसे क्षमा कर दे, ऐ अल्लाह! उस पर दया कर। (बुखारी)

④- नमाज़ शैतान पर विजय प्राप्त करने, उसे परास्त करने और उसे अपमानित करने का साधन है।

⑤- नमाज़ मनुष्य के लिए क़ियामत के दिन सम्पूर्ण प्रकाश (नूर) प्राप्त करने का कारण है, इसके विषय में नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

((بشروا المشائين في الظلم إلى المساجد، بالنور التام يوم القيامة)) رواه أبو داود و الترمذي.

अंधेरों में मस्जिदों की ओर जाने वालों को, क़ियामत के दिन सम्पूर्ण प्रकाश (नूर) की शुभ सूचना दे दो। (अबु-दाऊद, त्रिमिज़ी)

⑥- जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने का कई गुना अज्र व सवाब (पुण्य) है, इसके विषय में नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

((صلاة الجماعة أفضل من صلاة الفذ بسبع وعشرين درجة)) متفق عليه.

जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ना अकेले नमाज़ पढ़ने से सत्ताईस गुना अधिक श्रेष्ठ है। (बुखारी व मुस्लिम)

⑦- नमाज़ में उन मुनाफिक़ों (पाखण्डियों) के अवगुणों में से एक अवगुण से छुटकारा है जिनका ठिकाना जहन्नम का सबसे निचला भाग है, नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं :

((ليس صلاة أثقل على المنافقين من صلاة الفجر والعشاء ، ولو يعلمون ما فيهما لأتوهما ولو حبوا))

متفق عليه.

मुनाफिक़ों पर फज्र और इशा की नमाज़ से अधिक भारी कोई नमाज़ नहीं, यदि उन्हें पता चल जाए कि उन दोनों में क्या - अज्र व सवाब- है तो वह उसमें अवश्य आएं चाहे घुटनों के बल घिसट कर ही क्यों न आना पड़े। (बुखारी व मुस्लिम).

⑧- यह मनुष्य के लिए वास्तविक सौभाग्य, हार्दिक सन्तुष्टि की प्राप्ति और मानसिक रोगों तथा जीवन की समस्याओं से छुटकारा पाने का उचित मार्ग है, जिन से आजकल अधिकांश लोग जूझ रहे हैं, जैसे कि शोक, चिन्ता, बेचैनी, व्याकुलता, और बहुत से परिवारिक, व्यापारिक और वैज्ञानिक मामलों में नाकामी इत्यादि।

⑨- नमाज़ स्वर्ग में प्रवेष पाने का कारण है, इसके विषय में नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

((من صلى البردين دخل الجنة)) متفق عليه.

जिसने दो ठंढी नमाज़ें (अस्र और फज्र की नमाज़ें) पढ़ीं वह जन्नत में प्रवेष करेगा। (बुखरी व मुस्लिम)

((لن يلج النار أحد صلى قبل طلوع الشمس وقبل غروبها)) يعني الفجر و العصر. رواه مسلم.

जिस व्यक्ति ने भी सूरज निकलने और उसके डूबने से पहले नमाज़ पढ़ी वह जहन्नम में कदापि नहीं जाएगा, अर्थात फज्र और अस्र की नमाज़। (मुस्लिम)

इसके अतिरिक्त इस्लाम के अन्दर अन्य नमाज़ें भी हैं जो अनिवार्य नहीं हैं, बल्कि वह सुन्नत (ऐच्छिक) हैं, जैसे कि सलातुल ईदैन (ईदुल-फ़ित्र और ईदुल-अज़्हा की नमाज़) चांद और सूरज ग्रहण की नमाज़, सलातुल-इस्तिस्क़ा, (वर्षा मांगने की नमाज़) और सलातुल-इस्तिखारा इत्यादि।

तीसरा स्तम्भ : ज़कात

ज़कात इस्लाम का तीसरा स्तम्भ है, उसके महत्व के कारण अल्लाह तआला ने कुरआन करीम में बहुत से स्थानों पर उसका और नमाज़ का एक साथ उल्लेख किया है, यह कुछ निर्धारित शर्तों के साथ मालदारों की सम्पतियों में एक अनिवार्य अधिकार है, इसे कुछ

निर्धारित लोगों पर निर्धारित समय में वितरण किया जाता है।

ज़कात की वैधता की हिक्मत :

इस्लाम में ज़कात के वैध किए जाने की अनेक हिक्मतें और लाभ हैं, जिनमें से कुछ यह हैं :

①- मोमिन के हृदय को गुनाहों और नाफ़रमानियों के प्रभाव और दिलों पर उसके दुष्ट परिणामों से पवित्र करना, और उसकी आत्मा को बखीली और कंजूसी की बुराई और उन पर निष्कर्षित होने वाले बुरे नताईज से पाक और शुद्ध करना, अल्लाह तआला का फरमान है :

﴿خُذْ مِنْ أَمْوَالِهِمْ صَدَقَةً تُطَهِّرُهُمْ وَتُزَكِّيهِمْ بِهَا﴾ [التوبة: ١٠٣].

उनके मालों में से ज़कात लेलीजिए, जिसके द्वारा आप उन्हें पाक और पवित्र कीजिए।

(सूरतुत-तौबः १०३)

②- निर्धन मुसलमान के लिए किफायत, उसके आवयश्कता की पूर्ति और उसकी खबरगीरी (देख रेख), और उसे ग़ैरूल्लाह के सामने हाथ फैलाने की ज़िल्लत से बचाना।

③- कर्ज़दार मुसलमान के कर्ज़ को चुकाकर, और उसके ऊपर क़र्ज़ देने वालों की ओर से जो क़र्ज अनिवार्य है उसकी पूर्ति करके उसके शोक और चिन्ता को हलका करना।

④-अस्त व्यस्त और खिन्न (परागन्दा और बिखरे हुए) दिलों को ईमान और इस्लाम पर एकत्र करना, और उन्हें उनके अन्दर दृढ़ विश्वास न होने के कारण पाए जाने वाले सन्देहों और मानसिक व्याकुलताओं से निकाल कर दृढ़ ईमान और परिपूर्ण विश्वास की ओर लेजाना।

⑤- मुसलमान यात्री की सहायता करना, यदि वह रास्ते में फंस जाए (आपत्ति ग्रस्त होजाए) और उसके पास उसकी यात्रा के लिए पर्याप्त व्यय न हो, तो उसे ज़कात के फण्ड (कोष) से इतना माल दिया जाएगा जिससे उसकी आवश्यकता पूरी होजाए यहां तक कि वह अपने घर वापस लौट आए।

⑥- धन को पवित्र करना, उसको बढ़ाना, उसकी सुरक्षा करना, और अल्लाह तआला की आज्ञापालन, उसके आदेश का सम्मान और उसके मख्लूक़ पर उपकार करने की बरकत से उसे दुर्घटनाओं से बचाना।

जिन धनों में ज़कात अनिवार्य है :

वह चार प्रकार के हैं, जो निम्नलिखित हैं :

❶- घरती से निकलने वाले अनाज और ग़ल्ले।

❷- क़ीमतें (मूल्याएं) जैसे सोना चांदी और बैंक नोट (करेन्सियां)।

❸- तिजारत के सामान, इससे अभिप्राय हर वह वस्तु है जिसे कमाने और व्यवपार करने के लिए तैयार किया गया हो, जैसेकि ... जानवर, अनाज, गाड़ियां आदि।

❹- चौपाए और वह ऊंट बकरी और गाय हैं।

इन सब पूंजियों में ज़कात कुछ निर्धारित शर्तों के पाए जाने पर ही अनिवार्य है, यदि वह नहीं पाए गए तो ज़कात अनिवार्य नहीं है।

ज़कात के हक़दार लोग :

इस्लाम में ज़कात के कुछ विशेष मसारिफ (उपभोक्ता) हैं, और वह निम्नलिखित वर्ग के लोग हैं:

①- गरीब और निर्धन लोग (जिनके पास उनकी ज़रूरतों का आधा सामान भी नहीं होता है)

②- मिस्कीन लोग (जिनके पास उनकी ज़रूरत का आधा, या उससे अधिक सामान होता है, किन्तु पूरा सामान नहीं होता है।)

③- ज़कात वसूल करने पर नियुक्त कर्मचारी।

④- जिनके दिल की तसल्ली की जाती है, (अर्थात नौ-मुस्लिम, मुसलमान क़ैदी आदि)

⑤- गुलाम (दास या दासी) आज़ाद करने के लिए।

⑥- कर्ज़ खाए हुए लोग, तथा तावान उठाने वाले लोग।

⑦- अल्लाह के मार्ग में अर्थात जिहाद (धर्म-युद्ध) के लिए।

⑧- यात्री (अर्थात वह यात्री जिसका यात्रा के दौरान माल असबाब समाप्त होजाए)

ज़कात के फायदे :

①- अल्लाह और उसके रसूल के आदेश का आज्ञापालन, और अल्लाह और उसके रसूल की प्रिय चीज़ को अपने नफ्स की प्रिय चीज़ धन पर प्राथमिकता देना।

②- अमल के सवाब (पुण्य) का कई गुना बढ़ जाना, (अल्लाह तआला का फरमान है):

﴿مَثَلُ الَّذِينَ يُنْفِقُونَ أَمْوَالَهُمْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ كَمَثَلِ حَبَّةٍ أَنْبَتَتْ سَبْعَ سَنَابِلَ فِي كُلِّ سُنْبُلَةٍ مِائَةُ حَبَّةٍ وَاللَّهُ يُضَاعِفُ لِمَنْ يَشَاءُ﴾ [البقرة: ٢٦١].

जो लोग अपना धन अल्लाह तआला के रास्ते में खर्च करते हैं उसका उदाहरण उस दाने के समान है जिसमें सात बालियां निकलें और हर बाली में सौ दाने हों, और अल्लाह तआला जिसे चाहे बढ़ा चढ़ाकर दे। (सूरतुल-बक़राः २६१)

③- ज़कात निकालना ईमान का प्रमाण और उसकी निशानी है, जैसा कि हदीस में है :

((**والصدقة برهان**)) رواه مسلم.

और सदक़ा (दान करना) (ईमान का) प्रमाण है। (मुस्लिम)

④- गुनाहों और दुष्ट आचरण (अख्लाक़) की गन्दगी से पवित्रता प्राप्त करना, अल्लाह तआला का फरमान है :

﴿خُذْ مِنْ أَمْوَالِهِمْ صَدَقَةً تُطَهِّرُهُمْ وَتُزَكِّيهِمْ بِهَا﴾ [التوبة:١٠٣].

आप उनके धनों में से सद्क़ा (दान) लेलीजिए, जिसके द्वारा आप उनको पाक साफ करदें। (सूरतुत्-तौबाः १०३)

⑤- धन में बढ़ोतरी, बर्क़त और उसकी सुरक्षा, और उसकी बुराई से बचाव होना, इसलिए कि हदीस में है कि:

((ما نقص مال من صدقة)). رواه مسلم

दान पुण्य (सदक़ा) करने से धन में कोई कमी नहीं होती। (मुस्लिम)

⑥- दान पुण्य करने वाला क़ियामत के दिन अपने दान पुण्य के छावों में होगा, जैसा कि उस हदीस में है कि अल्लाह तआला सात लोगों को उस दिन अपने छाया में स्थान देगा जिस दिन कि उसके छाया के अतिरिक्त कोई और छाया न होगा :

((رجل تصدق بصدقة فأخفاها حتى لا تعلم شماله ما تنفق يمينه)) متفق عليه.

एक वह व्यक्ति जिसने दान पुण्य किया, तो उसे इस प्रकार गुप्त रखा कि जो कुछ उसके दाहिने हाथ ने खर्च किया है, उसका बायां हाथ उसे नहीं जानता हैं। (बुखारी व मुस्लिम)

⑦- अल्लाह तआला की कृपा और दया का कारण है: (अल्लाह तआला का फरमान है):

﴿وَرَحْمَتِي وَسِعَتْ كُلَّ شَيْءٍ فَسَأَكْتُبُهَا لِلَّذِينَ يَتَّقُونَ وَيُؤْتُونَ الزَّكَاةَ﴾ [الأعراف:١٥٦]

मेरी रहमत सारी चीज़ों को सम्मिलित है, सो उसे मैं उन लोगों के लिए अवश्य लिखूंगा, जो डरते हैं और ज़कात देते हैं। (सूरतुल-आराफः १५६).

चौथा स्तम्भ : रोज़ा

इससे अभिप्राय यह है कि : रोज़े की नियत से, फज्र निकलने से लेकर सूरज डूबने तक, तमाम रोज़ा तोड़ने वाली चीज़ों जैसे कि खाने पीने और सम्भोग से रूक जाना। यह रोज़ा रमज़ानुल मुबारक के पूरे महीने का रखना है जो साल भर में एक बार आता है।

अल्लाह तआला का फरमान है :

﴿يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ كَمَا كُتِبَ عَلَى الَّذِينَ مِنْ قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُونَ﴾

[البقرة:١٨٣].

ऐ लोगो जो ईमान लाऐ हो तुम पर रोज़े रखना अनिवार्य किया गया है जिस प्रकार तुम से पूर्व के लोगों पर अनिवार्य किया गया था, ताकि तुम डरने वाले (परहेज़गार) बन जाओ। (सूरतुल-बक्राः १८३).

और रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फरमायाः

((**من صام رمضان إيمانا واحتسابا غفر له ما تقدم من ذنبه**)) متفق عليه.

जिसने ईमान के साथ और सवाब की नियत रखते हुए रोज़ा रखा उसके पिछले गुनाह क्षमा कर दिए जायेंगे। (बुखारी व मुस्लिम)

रोज़े के फायदे :

इस महीना का रोज़ा रखने से मुसलमान को अनेक ईमानी, मानसिक और स्वास्थ आदि सम्बन्धी फायदे प्राप्त होते हैं, जिनमें से कुछ यह हैं :

❶- रोज़ा पाचन क्रिया और मेदा (आमाशय) को सालों साल लागातार (निरंतर) कार्य करने के कष्ट से आराम पहुंचाता है, अनावश्यक चीज़ों (फज़ूलात, मल) को पिघला देता है, शरीर को शक्ति प्रदान करता है, तथा वह बहुत से रोगों के लिए भी लाभदायक है।

❷- रोज़ा नफ़्स को शाईस्ता (सभ्य, शिष्ट) बनाता है और भलाई, व्यवस्था, आज्ञापालन, धैर्य और इख़्लास (निस्वार्थता) का आदी बनाता है।

❸- रोज़ेदार को अपने रोज़ेदार भाईयों के बीच बराबरी का एहसास होता है, वह उनके साथ रोज़ा रखता है और उनके साथ ही रोज़ा खोलता है, और उसे सर्व-इस्लामी एकता का अनुभव होता है, और उसे भूख का एहसास होता है तो वह अपने भूखे और ज़रूरतमंद भाईयों की खबरगीरी और देख रेख करता है।

तथा रोज़े के कुछ आदाब हैं जिस से रोज़ेदार का सुसज्जित होना महत्वपूर्ण है ताकि उसका रोज़ा शुद्ध (सहीह) और पूर्ण हो।

तथा कुछ चीज़ें रोज़े को बातिल (व्यर्थ और अमान्य) करने वाली भी हैं, यदि रोज़ेदार उनमें से किसी एक

चीज़ को करले तो उसका रोज़ा बातिल होजाता है। तथा इस्लाम ने बीमार, यात्री, दूध पिलाने वाली महिला और इनके अतिरिक्त अन्य लोगों की हालत की रिआयत करते हुए यह वैध किया है कि वह इस महीने में रोज़ा तोड़ दें, और साल के आने वाले समय में उसकी क़ज़ा करें।

पांचवाँ स्तम्भ : हज्ज

यह स्तम्भ मुसलमान पुरूष तथा स्त्री पर पूरे जीवन में केवल एक बार अनिवार्य है, और जो इससे अधिक बार किया जाता है वह नफ़्ली और सुन्नत है जिस पर क़ियामत के दिन अल्लाह तआला के पास बहुत बड़ा पुण्य (अज्र व सवाब) मिलेगा, तथा यह हज्ज मुसल्मान पर केवल उसी समय अनिवार्य है जब वह उसके करने की शक्ति रखता हो, चाहे वह आर्थिक (माली) शक्ति हो या शारीरिक शक्ति, यदि वह इसकी शक्ति नहीं रखता है तो वह इस स्तम्भ को अदा करने से भार मुक्त होजाता है।

हज्ज के फायदे (लाभ) :

हज्ज की अदायगी से मुसलमान को अधिकांश फायदे प्राप्त होते हैं, जिनमें से कुछ यह हैं :

❶- यह आत्मा, शरीर और धन के द्वारा अल्लाह तआला की उपासना (इबादत) है।

❷- हज्ज में संसार के हर स्थान से मुसल्मान एकत्र होते हैं; सब के सब एक स्थान पर मिलते हैं, एक ही पोशाक पहनते हैं, और एक ही समय में एक ही रब (प्रमेश्वर) की इबादत (उपासना) करते हैं, राजा और प्रजा, धनी और निर्धन, काले और गोरे, अर्बी और अज्मी के बीच कोई अन्तर नहीं होता है; हां यदि होता है तो केवल आत्मसंयम (तक़्वा) और सत्कर्म के आधार पर, इस प्रकार मुसल्मानों का आपस में परिचय तथा सहयोग, और प्रेम तथा एकता का भाव उत्पन्न होता है, और इस सम्मेलन के द्वारा वह उस दिन को याद करते हैं जिस दिन अल्लाह तआला उन सब को मरने के पश्चात एक साथ क़ियामत के दिन पुनः जीवित करेगा, और हिसाब के लिए एक ही स्थान पर एकत्र करेगा, इसलिए वह (यह याद करके) अल्लाह तआला की आज्ञापालन करके मरने के बाद के लिए तैयारी करते हैं।

हज्ज के कार्यकर्म का क्या उद्देश्य है ?

किन्तु प्रश्न यह है कि काबा जो कि मुसल्मानों का क़िब्ला है जिसकी ओर अल्लाह तआला ने उन्हें, चाहे वह कहीं भी हों नमाज़ के अन्दर मुख करने का आदेश दिया है, उसके चारों ओर तवाफ (परिक्रमा) करने का क्या उद्देश्य है ? इसी प्रकार मक्का के अन्य स्थानों अरफात और मुज़दलिफा में उसके निर्धारित समय में ठहरने तथा मिना में क़ियाम करने का क्या उद्देश्य है ? इसका केवल एक ही उद्देश्य है, और वह है : **उन पाक और पवित्र स्थानों में उसी कैफियत और उसी तरीक़े पर अल्लाह तआला की इबादत करना जिस प्रकार अल्लाह तआला ने आदेश दिया है।**

जहाँ तक स्वयं काबा, तथा उन स्थानों और सारे सृष्टि की बात है तो ज्ञात होना चाहिए कि उनकी पूजा और उपासना नहीं की जाएगी, और न ही वे लाभ और हानि पहुंचा सकते हैं, बल्कि इबादत केवल अकेले अल्लाह की की जाएगी, और लाभ और हानि पहुंचाने वाला केवल अकेला अल्लाह तआला है, यदि अल्लाह ने उस घर का हज्ज करने और उन मशायिर और स्थानों पर ठहरने का आदेश न दिया होता तो मुसल्मान के

लिए जायज़ नहीं होता कि वह हज्ज करे और वो सारी चीज़ें करे, इसलिए कि उपासना (इबादत) मनुष्य के अपने विचार और स्वेच्छा के आधार पर नहीं हो सकती, बल्कि कुरआन करीम में अल्लाह तआला के आदेश या रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सुन्नत के अनुसार ही हो सकती है, अल्लाह तआला का फरमान है:

﴿وَلِلَّهِ عَلَى النَّاسِ حِجُّ الْبَيْتِ مَنِ اسْتَطَاعَ إِلَيْهِ سَبِيلاً وَمَنْ كَفَرَ فَإِنَّ اللَّهَ غَنِيٌّ عَنِ الْعَالَمِينَ﴾ [آل عمران:٩٧]

अल्लाह तआला ने उन लोगों पर खाना-काबा का हज्ज अनिवार्य कर दिया है जो वहां तक पहुंचने की ताक़त (सामर्थ्य) रखते हों, और जो व्यक्ति कुफ्र (अवज्ञा) करे तो अल्लाह तआला (उस से बल्कि) सर्व संसार से बेनियाज़ (निस्पृह) है। (सूरत आल-इम्रानः ९७)

संछेप के साथ हज्ज के कार्यकर्म यह हैं:

१- एहराम (हज्ज में दाखिल होने की नियत करना)।

२- मिना में रात बिताना।

३- अरफात में ठहरना

४- मुज़्दलिफा में रात बिताना।

५- कंकरी मारना।

६- कुर्बानी का जानवर ज़ब्ह करना।

७- सिर के बाल मुंडाना।

८- तवाफ (काबा की परिक्रमा करना)।

९- सई (सफा और मरवा के बीच दौड़ना)।

१०- एहराम से हलाल होना (एहराम खोल देना)

११- मिना वापस जाना और वहाँ रात बिताना।

उम्रा के आमाल यह हैं :

❶-एहराम (उम्रा में दाखिल होने की नियत करना)।

❷- तवाफ करना

❸- सई करना

❹-सिर के बाल मुंडाना।

❺-एहराम से हलाल होना (एहराम खोल देना)।

ऊपर उल्लेख किए गये कार्यकर्मों में से हर एक की अन्य विस्तार, व्याख्या और टिप्पणी है जिसे आप अल्लाह की इच्छा से उस समय जान लेंगे जब आप शीघ्र ही हज्ज व उम्रा के मनासिक को अदा करने का संकल्प (दृढ़ निश्चय) करेंगे।

अन्ततः

इस सन्देश के अन्त में जिसमें हमने इस्लाम की कुछ शिक्षाओं और सिद्धान्तों, और उसके आचरण और कार्यकर्मों के बारे में सन्छिप्त परिचय प्रस्तुत किया है, हम आपका इस बात पर शुक्रिया अदा किए बिना नहीं रह सकते कि आपने हमें यह अवसर प्रदान किया कि हम आपके सामने संसार के माहनतम धर्म और अन्तिम आसमानी सन्देश के बारें में यह सन्छिप्त जानकारी पेश करसकें, आशा है कि यह जानकारी इस धर्म को स्वीकार करने और उसकी शिक्षाओं और सिद्धान्तों को मानने के बारें ठण्डे दिल से (संजीदगी से) सोच-विचार करने के लिए शुभ आरम्भ सिद्ध होगी, हम आपको ऐसा मनुष्य समझते हैं जो केवल हक़ (सत्य) का इच्छुक है और ऐसे धर्म की तलाश में है जो आश्वासन (सन्तुष्टि) और पैरवी करने के पात्र हो, और इस ईमानी (विश्वस्तता और भक्ति), आत्मिक और मानसिक यात्रा के बाद हम आपके बारे में यही सोचते और गुमान करते हैं कि आप हर उस विचार, या आस्था, या उपासना से अलग-थलग होजाएंगे जो इस धर्म के विरूध और मुखालिफ है, ताकि आप तौहीद (एकेश्वरवाद), प्रकृति

और बुद्धि के धर्म, सारे ईश्दूतों के धर्म ... संदेश्वाहकों के अन्त मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के सन्देश की पैरवी करें, ताकि आप लोक व प्रलोक के जन्नत से सम्मानित हों, ताकि फिर आप इस शुद्ध और सच्चे धर्म की ओर लोगों को आमन्त्रण देने वाले बन जाएं, ताकि आप उन्हें संसार के नरक और उसके शोक और चिन्ता से मुक्त करा सकें, और उन्हें एक बहुत ही भयानक और कठोर चीज़ से नजात दिलासकें और वह हैं प्रलोक में नरक की आग, यदि वह इस धर्म पर विश्वास रखे बिना और इस महान रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की पैरवी किए बिना मर जाते हैं।

अनुवादक

(अताउर्रहमान ज़ियाउल्लाह) *

atazia75@gmail.com

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
●**प्रस्तावना**	३
●**धर्म का अर्थः**	७
धर्मों के प्रकारः	८
१. आसमानी धर्म	८
२. मूर्तिपूजन और लौकिक धर्म	९
क्या मनुष्य को धर्म की आवश्यकता है ?	१०
१. संसार के महान तत्वों को जानने की अकूल (बुद्धि) की आवश्यकताः	११
२. मानव प्रकृति की आवश्यकताः	१८
३. मनुष्य की मानसिक स्वस्थ और आत्मिक शक्ति की आवश्यकता :	२२
४. समाज की प्रेरकों (प्रोत्साहनों) और आचरण के नियमों व व्यवहार संहिता की आवश्यकताः	२७

●**इस्लामी अक़ीदा की विशेषताएं:**	३१
❶- स्पष्ट अक़ीदा:	३१
❷- प्राकृतिक (फित्रती) अक़ीदा:	३२
❸- ठोस और सदृढ़ अक़ीदा:	३४
❹- प्रमाणित अकीदा:	३५
●**एतिक़ाद के अन्दर इस्लाम की मध्यता:**	३९
●**जीवन के तमाम पहलुओं में इस्लाम की सत्यता**	५०
प्रथम: इबादत के अन्दर इस्लाम की सत्यता	५०
द्वितीय: अख्लाक़ के अन्दर इस्लाम की सत्यता	५५
●**इस्लाम में क़ानून साज़ी के स्रोत:**	६१
१. तनाकुज़ और उग्रवाद से सुरक्षा	६१
२. जानिबदरी और स्वेच्छा से पाक होना	६४
३. सम्मान और पैरवी करने में सरलता	६६
४. मनुष्य की, मनुष्य की पूजा और गुलामी से आजादी	७५
●**इस्लाम क्या है?**	७८

इस्लाम के स्तम्भः	७८
प्रथम स्तम्भः 'ला इलाहा इल्लल्लाह' और 'मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' की गवाहीः	७९
द्वितीय स्तम्भः नमाज़	८३
नमाज़ और उसकी रिकअतों की संख्याः	८३
नमाज़ के फायदे और विशेषताएं :	८४
तीसरा स्तम्भ : ज़कात	८९
ज़कात की वैधता की हिक्मत :	९०
जिन धनों में ज़कात अनिवार्य है :	९२
ज़कात के हक़्दार लोग :	९२
ज़कात के फायदे :	९३
चौथा स्तम्भ : रोज़ा	९६
रोज़े के फायदे :	९७
पांचवां स्तम्भ :हज्ज	९९
हज्ज के फायदे (लाभ) :	१००
हज्ज के कार्यकर्म का क्या उद्देश्य है ?	१०१
संछेप के साथ हज्ज के कार्यकर्म यह हैं:	१०२

उम्रा के कार्यकर्म यह हैं :	१०३
अन्ततः	१०५
●विषय सूची	१०७